वर्ष १ अंक ५
विक्रम संवत् २०७५ फाल्गुन
मार्च २०१९

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

आर्य लेखक परिषद

आर्य लेखक परिषद् के तत्वाधान में प्रयागराज कुम्भ में आयोजित साहित्यकार सम्मेलन की झलकियाँ

साहित्यकार सम्मेलन कुम्भ प्रयागराज के समाचार विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित

ाहित्यकार ही हैं समाज के सच्चे मार्गदर्श

कुम्भ सम्मेलन में मिला डॉ. आलोक को राष्ट्रीय सम्मान, स्मारिका पुस्तक का हुआ लोकार्पण

दतिया/ 'वैदिक वांग्मय ालीन साहित्यकारों की अद्भुत, अनूठी, भारतीयों ोड़ने की उत्कृष्ट कृतियाँ जारों साल पहले लिखे य की प्रासंगिकता आज

लेखक परिषद, दिल्ली एवं अखिलेश आर्यन्दु के संयोजन में प्रयागराज कुंभ में अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन एवं एक स्मारिका का विमोचन होना एक सार्थक पहल है

सर्वकालिकता और वर्तमान लेखन की दिशा और दशा' विषय पर आयोजित दो दिवसीय अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन एवं राष्ट्रीय सम्मान समारोह के समापन समारोह की मुख्य अतिथि की आसंदी से अनेक अंतर्राष्ट्रीय सम्मान सहित इंडियन फिल्म फेस्टिविल में सम्मानित डॉ. आलोक सोनी ने व्यक्त किए। अध्यक्षता उत्तर प्रदेश शासन के पूर्व ज्वाइंट सेक्रेट्री, चिंतक एवं वैदिक विद्वान डॉक्टर रूपचंद दीपक ने की। वक्ता के रूप में आकाशवाणी के पूर्व निदेशक, नागरी लिपि परिषद, नई दिल्ली

उद्घाटन पूर्व आईएएस डॉ प्रमोद कुमार अग्रवाल ने किया। दो दिवसीय समारोह के 6 सत्रों में वैदिक वांग्मय की सर्वकालिकता और वर्तमान लेखन की दशा और दिशा, भारतीय संस्कृति और देवनागरी लिपि का वैज्ञानिक व सांस्कृतिक संदर्भ, सामाजिक व सांस्कृतिक सरोकार में साहित्यकार व पत्रकार का योगदान, साहित्यकार का समकालीन विवेक, हिंदी साहित्य में लोक साहित्य का महत्व, विषय पर जाहिद सूफी (झारखंड) मनोज फगवाडी (पंजाब), पुष्पा पाल (दिल्ली), मनोज पांडे (बिहार),

अपने विचार व्यक्त ि अवसर पर हिंदी विद्वा आलोक सोनी, डॉ. दीपक, डॉ. हरी सिंह रशिक बिहारी सिंह नीर 37 चुनिंदा विद्वानों क स्मृतिचिन्ह, सम्मान पत्र राष्ट्रीय साहित्य प्रज्ञा 2019 से सम्मानित सम्मेलन में डॉ.अखिले के संपादन में प्रका प्रज्ञा कुम्भ स्मारिका, शास्त्री की गर्व योग्य लोकार्पण किया गया किशोर सिंह के संचाल में भव्य अ.भा. कवि स आयोजन किया गया

समाज के सच्चे मार्गदर्शक साहित्यकार हैं

दो दिवसीय अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन आयोजित

दतिया। नईदुनिया प्रतिनिधि

वैदिक वांग्मय समकालीन साहित्यकारों की एक अद्भुत, अनूठी, भारतीयों को जोड़ने की उत्कृष्ट कृतियां हैं। हजारों साल पहले लिखे साहित्य की प्रासंगिकता आज भी हमें देखने को मिलती है, जब बगैर आमंत्रण के, आस्था से स्वयं प्रेरित होकर करोडों देशवासी कुम्भ स्नान करने प्रयागराज चले आते हैं। उक्त विचार आर्य लेखक परिषद, दिल्ली के तत्वाधान में प्रयागराज कुम्भ के सेक्टर 14 के जिला आर्य प्रतिनिधि सभा के दयानंद मठ, में वैदिक वांग्मय की सर्वकालिकता और वर्तमान लेखन की दिशा और दशा विषय पर आयोजित दो दिवसीय अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन व राष्ट्रीय सम्मान समारोह के समापन समारोह की मुख्य अतिथि की आसंदी से अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मान सहित इंडियन फिल्म फेस्टिबिल में सम्मानित डॉ. आलोक सोनी ने व्यक्त किए।

अध्यक्षता उत्तर प्रदेश शासन के पूर्व ज्वाइंट सेक्रेट्री, चिंतक व वैदिक विद्वान डॉक्टर रूपचंद दीपक ने की। वक्ता के रूप में आकाशवाणी के पूर्व निदेशक, नागरी लिपि परिषद, नई दिल्ली के मंत्री डा. हरी सिंह पाल, प्रसिद्ध चिंतक संपादक लेखक संत समीर उपस्थित थे। दो दिवसीय समारोह के 6 सत्रों में वैदिक वांग्मय की सर्वकालिकता और वर्तमान लेखन की दशा और दिशा, भारतीय संस्कृति और देवनागरी लिपि का वैज्ञानिक व सांस्कृतिक संदर्भ, सामाजिक व सांस्कृतिक सरोकार में साहित्यकार व पत्रकार का योगदान, साहित्यकार का समकालीन विवेक, हिंदी साहित्य में लोक साहित्य का महत्व, विषय पर जाहिद सूफी (झारखंड) मनोज फगवाड़ी (पंजाब), पुष्पा पाल (दिल्ली), मनोज पांडे (बिहार), डॉ. प्रीति विमर्शनी (उ.प्र.), संध्या सोनी (म.प्र.), दीपांकर गुप्ता, अरविंद साहू, तेजपाल सिंह धामा, बालेन्द्रु मिश्रा, दुर्गा शंकर वर्मा, डॉ. रशिक किशोर सिंह नीरज सहित देश के 11 प्रदेशों से आए अनेक हिंदी

दतिया। ''वैदिक वांग्मय समकालीन साहित्यकारों की एक अद्भुत, अनूठी, भारतीयों को जोड़ने की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं, हजारों साल पहले लिखे साहित्य की प्रासंगिकता आज भी हमें देखने को मिलती है, जब बगैर आमंत्रण के, आस्था से स्वयं प्रेरित होकर करोड़ों देशवासी कुम्भ स्नान

सामाजिक व सांस्कृतिक सरोकार में साहित्यकार व पत्रकार का योगदान, साहित्यकार का समकालीन विवेक, हिंदी साहित्य में लोक साहित्य का महत्व, विषय पर जाहिद सूफी (झारखंड) मनोज फगवाड़ी (पंजाब), पुष्पा पाल (दिल्ली), मनोज पांडे (बिहार), डॉ. प्रीति विमर्शनी (उ.प्र.), संध्या

प्रयागराज • मंगलवार • 19 फरवरी 2019

35 साहित्यकारों को प्रज्ञा सम

प्रयागराज। कुम्भ के सेक्टर 14 स्थित जिला आर्य प्रतिनिधि शिविर में अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन का आयोजन किया गया।

दो दिवसीय कार्यक्रम में सोमवार को अतिथियों ने देश के कोने-कोने से आए 37 साहित्यकारों को राष्ट्रीय साहित्य प्रज्ञा सम्मान से सम्मानित किया गया।

शामिल रहे। जाहिद सू फगवाड़ी, पुष्पा पाल, मनो प्रीति विमर्शनी, दीपांकर गु साहू, तेजपाल सिंह थापा, ब दुर्गा शंकर वर्मा, पूर्व आई अग्रवाल ने विचार व्यक्त कि डॉ. अखिलेश आर्यन्दु ने सम्मेलन में गीत, गजल

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

मार्च २०१९

वर्ष–१ अंक–६,
विक्रम संवत् २०७५
दयानान्दाब्द– १९५
कलि संवत् – ५११६
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,११६

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

समन्वय सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(९९९३९७०९४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
ए–११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली–११००४१
चलभाष– ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ
१ महर्षि दयानन्द बोध रात्रि (सम्पादकीय)	०४
२ आर्य–दास–दस्यु......	०६
३ जी रहे हैं लोग कैस......	०९
४ Vedic Scholars Be Called Brahmins	०९
५ वैदिक वाङ्.मय की सार्वकालिकता और वर्तमान......	१३
६ दयानन्द वंदना	१५
७ शूरता की मिसाल : पंडित लेखराम आर्य मुसाफिर	१६
८ क्या उपनिषद् वेदों के विरोधी हैं?.....	१९
९ राष्ट्र लिपि : देवनागरी	२१
१० होली के प्राकृतिक और सामाजिक.....	२७
११ परिषद्–समाचार	३०

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – www.aryalekhakparishad.com
फेसबुक https://www.facebook.com/आर्यलेखकपरिषद्

Digital

सम्पादकीय

महर्षि दयानन्द बोध रात्रि (महाशिवरात्रि)

घटनाओं के पर्याय को ही संसार कहते हैं। प्रतिपल–प्रतिक्षण कुछ न कुछ घट रहा होता है। किसी का जन्म हो रहा है, कोई मर रहा है, कोई हंस रहा है, कोई रो रहा है, कोई गा रहा है, कोई उदास बैठा है। सूरज का निकलना, दिन–रात का होना, सर्दी,गर्मी, बरसात का होना । बचपन, जवानी और बुढ़ापे के नजारे, मित्रता, लड़ाई, झगडे या इरादतन होने वाली हिंसा, अनजाने लगने वाली चोट, घायल होना या मर जाना इत्यादि घटनाएं हमारे समक्ष नित्य घटती रहती हैं, कुछ आँखों से दिखती हैं, कुछ सुनी जाती है, कुछ स्वयं भोगी जाती हैं।

प्रत्येक घटना हमें कुछ सोचने के लिए विवश करती है। हम अपनी समझ के अनुसार उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। प्रतिक्रिया ठीक भी हो सकती है और गलत भी हो सकती है। उसी के अनुसार अच्छे–बुरे परिणाम भी प्राप्त होते रहते हैं। घटना का अपने आप में कोई महत्व नहीं होता। महत्व होता है उसे देखने के बाद बनी हमारी सोच और प्रतिक्रिया का। कभी हम करुणा और दया से द्रवित होते हैं, कभी क्रोध से लाल हो उठते हैं। कभी हम भयभीत होते हैं, कभी उत्साहित होते हैं, कभी किसी को बचाने दौड़ पड़ते हैं, कभी किसी को पीटने। घटनाएँ ही प्राणियों से सारी उठा–पटक करवाती हैं।

घटनाएँ हमें शिक्षा और ज्ञान भी प्रदान करती हैं। कई बार कोई घटना हमारे दिल दिमाग को हिला देती है। कई घटनाओं को देखकर बनने वाली हमारी सोच और प्रतिक्रिया संसार के लोगों के कल्याण का कारण बन जाती है और कोई सर्वनाश का। इन्हीं घटनाओं में हमारे ह्रास और विकास, उत्थान और पतन का रहस्य छुपा रहता है। इन्हीं घटनाओं को देखकर कोई महापुरुष बन जाता है और कोई अधम पुरुष, कोई नायक तो कोई खलनायक, वैज्ञानिक तो कोई अंधविश्वासी और पाखण्डी।

ऐसी ही एक सामान्य सी घटना ईसा की उन्नीसवीं सदी में बहुत बड़े परिवर्तन का कारण बन गई। गुजरात प्रान्त के मौरवी नगर के समीप में स्थित टंकारा नामक ग्राम में एक समृद्ध ब्राह्मण कुल में एक बालक का जन्म हुआ। नाम दिया गया मूलशंकर। बालक के पिता शैव सम्प्रदाय में दीक्षित थे। जब मूलशंकर ७–८ वर्ष के हो गए तो पिताजी ने उसे भी शैव सम्प्रदाय में दीक्षित करने का प्रयास किया।

महाशिवरात्रि के पर्व पर पिता ने कहा की आज व्रत रखो, उपवास करो और रातभर जागकर शिवार्चन करो। बालक ने पिता से पूछा कि ऐसा करने से क्या प्राप्त होगा। पिता ने कहा 'जो ऐसा करते हैं'; भगवान शंकर उसे दर्शन देते हैं। बालक ने इस बात पर विश्वास करके सहर्ष व्रत रखना स्वीकार कर लिया।

सूर्यास्त के पश्चात् सब लोग शिव मंदिर पर भांग, धतूरा, विल्वपत्र, चन्दन, अक्षत, मिष्ठान्नादि पूजा सामग्री लेकर पहुँच गए। बालक मूलशंकर भी पिता के साथ आज मंदिर गया और शिवलिंग पर पूजा सामग्री रख कर विधिवत पूजन किया। आधी रात होते–होते सभी भक्तजनों को निद्रा देवी ने अपनी गोद में सुला लिया। बालक के पिताजी भी खर्राटे छोड़ने लगे। बालक को आश्चर्य हुआ कि ये लोग तो रातभर जागकर शिवार्चना करने और भगवान शिव के दर्शन करने की बात कर रहे थे फिर सो क्यों गए ? नींद तो बालक को भी सता रही थी, परन्तु वह पानी के छींटे आँखों पर छिड़क कर आलस्य को दूर करता रहा और शिवस्त्रोत्र पढ़ता जगता रहा। लालसा थी की शिव जी मेरी भक्ति से संतुष्ट हो कर मुझे दर्शन देंगे। तभी अचानक कहीं से एक चूहा आ गया और शिवलिंग पर चढ़ कर भक्षणीय पूजा सामग्री को खाने लगा और शिवलिंग पर ही मल त्याग भी कर दिया। बालक ने यह दृश्य देखा तो उसके मन में आया कि शिवजी इस चूहे को अवश्य दंड देंगे। जब बड़ी देर तक कुछ नहीं हुआ, चूहा बराबर शिव प्रतिमा पर उछल–कूद करता रहा तो बालक को संदेह हुआ, मन में विचार आया कि –

त्रिशूलधारी बहुरुद्ररूपः
कैलाशवासी किमयं महेशः।
यद् विक्रमैर्विस्मित विश्व चितम्
श्रुतं कथायाम् अतिवीर्यक्रतम्।।

–'**दयानन्ददिग्विजयम**' महाकवि मेधाव्रत

यो दैत्यवृन्दद्विप दर्पनाशे
निरन्तरं सिंह समान तेजः ।
कथं स तुच्छाखु तिरस्कृतांगः
पराक्रमी नैव पराक्रमेत् ।।

क्या यह वही त्रिशूलधारी, रुद्ररूप कैलाशवासी महेश्वर है जिसके पराक्रम से संसार आश्चर्यचकित है और कथाओं में मैंने जिसकी वीरता का वर्णन सुना है ?

जो दैत्यवृन्दरूप हाथियों का घमंड चूर करने में निरंतर सिंह के सामान तेजवाला है, वह तुच्छ चूहे के द्वारा स्वयं का शरीर दूषित और तिरस्कृत करने पर अपना पराक्रम क्यों नहीं प्रकट करता ?

बालक ने पिता को जगाया और पूछा कि पिताजी! क्या यह सचमुच शिव है ? चूहे ने इसे तिरस्कृत किया है और यह कुछ भी नहीं कर रहा। पिता ने कहा कि चुप रहो, यह शिव का प्रतीक है, असली शिव तो कैलाश में रहते हैं। बालक ने कहा तो फिर हम यहां क्यों बैठे है ? जब चूहे के द्वारा तिरस्कार करने पर इसमें कोई हरकत नहीं हो रही तो हमारी पूजा का भी इस पर कोई प्रभाव नहीं हो सकता। पिता ने डांट–डपट कर बालक को घर भगा दिया। पाठको! इसी छोटी सी घटना ने बालक मूलशंकर को 'युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती' बना दिया।

इस सामान्य घटना को देख कर मूलशंकर ने क्या समझा और क्या प्रतिक्रिया की यही बात बड़े महत्व की है, जिसके ऊपर हम और आप सभी को विचार करना चाहिए। मूलशंकर को जो बोध हुआ और प्रतिक्रिया स्वरूप उसने अपने जीवन में जो कुछ किया, वह सोच और वे कार्य क्या हमारे लिए किसी तरह कल्याणकारी या उपयोगी हैं? क्या उसकी सोच और प्रतिक्रिया से कोई अभूतपूर्व उपलब्धि हुई ? यदि सचमुच कुछ उपयोगी फल मिला तो क्या हमने उसका लाभ लिया ?

वस्तुतः उस सोच और प्रतिक्रिया ने एक वैचारिक क्रान्ति और आन्दोलन को जन्म दे दिया, जिसने भारत का भाग्य ही बदल डाला। भारत ही नहीं विश्व भर के मेधावी जनों की प्रेरणाश्रोत और आदर्श बन गई। विश्व मानवता के लिए वरदान और स्वतंत्रता प्रदायक संजीवनी बन गई। एक नए युग का, नई प्रवृति का जन्म हुआ। संसारभर में होने वाले प्रत्येक शुभ कार्य में दयानन्द की सोच मार्गदर्शन करने लगी। दयानन्द को सारे संसार के आदर का पात्र बना डाला। एक ऐसा महापुरुष बना दिया कि विरोधी भी उसकी सत्यवादिता, निर्मल चरित्र, निर्भीकता, न्यायप्रियता का बखान करते थकते नहीं थे। उसके समकालीन मानव समुदाय पर किसी न किसी रूप में उसके उत्कृष्ट व्यक्तित्व की छाप लग रही थी। इस लिए शैवों की वह महाशिवरात्रि दयानन्द की बोध रात्रि बन गई। पंडित चमूपति के शब्दों में –

यूँ तो हर रात की तारीकी, लाती है पयाम उजाले का
जिससे ये जहाँ पुर नूर हुआ, उस रात की कीमत क्या होगी ?

दयानन्द के साथ वह रात्रि भी धन्य हो गयी और हम सब को भी धन्य कर गई।

इस घटना के पश्चात मूलशंकर के मन मस्तिष्क को एक नई दिशा मिल गई, जिधर चल कर उसे अनेक महत्वपूर्ण तथ्य ज्ञात हुए इन तथ्यों से लोक प्रचलित अनेक भ्रान्तियों का निवारण हो गया, सत्य के अनेक जिज्ञासुओं का पथ प्रशस्त हुआ। भारतवर्ष का भाग्योदय हो गया। यह दयानन्द की विचारधारा उसके लिखित ग्रंथों में निहित है, जिसे अपनाकर संसार की अस्वस्थ मानवता को पुनः स्वस्थ किया जा सकता है। यह ऐसी औषधि है जिससे सब रोग कट सकते हैं।

वर्तमान में दयानन्द के अनुयायी होने का दम्भ करने वालों की कार्य शिथलता, उपेक्षा अथवा अरुचि के कारण इस बोधरात्रि को वांछित आदर नहीं मिल रहा है। दयानन्द की विचारधारा से जन सामान्य को परिचित कराने का कार्य लगभग ठप हो गया है। हाल ये है कि ये लोग पर्वों को उनकी नियत तिथि पर भी नहीं मनाते। यदि सोमवार को पर्व है तो उसे रविवार को ही मना लेंगे और यदि पर्व शनिवार को है तो उसे भी रविवार को ही आकर मनाते हैं। मनाना भी क्या है, वही यज्ञ कर लेना, एकाध भजन गा लेना और कुछ चर्चा कर लेना, बस। कोई रचनात्मक कार्यकलाप नहीं होता। ऐसी स्थिति में अब इस बोधरात्रि का बोध तो क्षीण होता जा रहा है और रात्रि की अन्धियारी बढ़ती जा रही है, ऐसा लगता है कि अब कभी सवेरा होगा ही नहीं। आर्यों इधर ध्यान दो ....

ज्योतिष्मतः यथोरक्ष धियाकृतान्

– वेदप्रिय शास्त्री

आर्य–दास–दस्यु : शब्द–उत्पत्ति, प्रमाण और विवेचना

– अखिलेश आर्येन्दु

आर्य, द्रविड़, दास और दस्यु शब्दों की उत्पत्ति और इनके मूलार्थ को जानने का प्रयास वे लोग ही करते हैं जो अनुसंधान या अपने निज ज्ञान में वृद्धि करने की जिज्ञासा रखते हैं। वेद में इन शब्दों के मूलार्थ क्या हैं, संस्कृत या अन्य भारतीय भाषाओं में क्या हैं, इसकी इने–गिने लोग ही जानकारी रखते हैं। सामान्यतः सुनकर, पढ़कर और परम्परा से जो लोगों को जानकारी हो जाती है उसे ही सत्य और प्रमाण के रूप में मान लिया जाता है। यही कारण है कि छोटे–बड़े, निम्न शिक्षित, मध्य शिक्षित और उच्च शिक्षित सभी लोग सुनी–सुनाई या पाठ्यक्रम में सम्मिलित इतिहासादि में पढ़ी बातों को ही अंतिम सत्य मानकर उस पर विश्वास कर लेते हैं। यही कारण है कि हिन्दुओं में अधिकांश लोग आर्य को विदेशी मानते हैं और द्रविड़ या दास को भारत का मूल निवासी। हिन्दुओं का कोई एक धर्म ग्रंथ न होने के कारण और उनके विधिवत् स्वाध्याय न होने के कारण एक प्रतिशत लोगों को भी आर्य, दास, द्रविण, दस्यु जैसे शब्दों और उनके मूलार्थ का ज्ञान नहीं हो पाता है। हिन्दुओं के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृति और नैतिक पतन होने का बहुत बड़ा कारण यह भी है। हिन्दुओं को छोड़कर विश्व के सभी मजहबों, मतों और जातियों के लोगों को अपने धर्म ग्रंथों के बारे में ठीक–ठीक पता है। हिन्दुओं को अपने महापुरुषों, ऋषि–मुनियों और देवी–देवताओं के महान् कृत्यों पर गर्व नहीं है। योगीराज कृष्ण, इन्द्र और अन्य अनेक देवात्माओं के सम्बन्ध में प्रचलित अश्लील, भ्रष्ट और चरित्रहीनता की कहानियां और प्रसंग एक चरित्रहीन व्यक्ति जैसा द्योतित होता है। वेद के सम्बन्ध में पौराणिक पुरोहितों, प्रवचन कर्ताओं और कथा वाचकों ने जो बेसिर–पैर और अज्ञानता पूर्ण बातों को जनता में फैलाया है उसके कारण भी हिन्दू जनमानस और अन्य मतावलम्बियों में असत्य और अज्ञानता का प्रचार–प्रसार हुआ है। स्पष्ट है आर्य–दास–दस्यु के सम्बन्ध में भी इसी तरह की बातें जनमानस में पैठ बना चुकी हैं। इसलिए सत्य, प्रमाण प्रक, तर्कपरक और सर्वहितकारी ज्ञान और विद्या के ग्रहण के लिए 'सत्यार्थप्रकाश' का स्वाध्याय दो–चार बार मनोवेग से अवश्य कर लेना चाहिए। इससे जीवन को जहाँ लक्ष्यपरक, विद्यापरक और विज्ञानपरक बनाने में मदद मिलती है वहीं पर सत्य, विज्ञान, विचार और धर्मयुक्त बनाने में सहायता मिलती है। इससे आर्य–दास–दस्यु जैसे अनेक शब्दों के मूलार्थ, अर्थ, व्याख्या और विस्तार जानने में भी प्रमाणयुक्त जानकारी प्राप्त होती है। इस अंक में गतांक से आगे के इस लेख में आर्य–दास–दस्यु पर विवेचना की जा रही है। लेख कैसा लगा, यह तो आप की प्रतिक्रिया से पता चलेगा।

–समन्वय सम्पादक

वेद में प्रयोग किए जाने वाले व्याकरण के सम्बन्ध में भारतीय और विदेशी विद्वानों में अलग–अलग मत हैं। आर्ष परम्परा के व्याकरणाचार्यों के विचार में वेद में प्रयुक्त व्याकरण संस्कृत भाषा में प्रयुक्त व्याकरण से भिन्न प्रकार का है। वर्णाक्षर भी संस्कृत में प्रयुक्त अक्षरों से अधिक हैं। उच्चारण भी भिन्न प्रकार का है। इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ वेद में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ से भिन्न प्रकार का है। इस पर चर्चा आवश्यक प्रसंग में आगे करूंगा। यहाँ पर आर्य, दास और दस्यु शब्द का वेद में किस अर्थ में प्रयोग हुआ है और इस शब्द की व्युत्पत्ति का व्याकरण क्या है, विचार करेंगे।

यह जानना आवश्यक है कि वेद में प्रयुक्त कोई भी शब्द रूढ़ नहीं है। इस कारण वेद के सभी शब्दों का अर्थ यौगिक –धातु के अर्थों के आधार पर होते हैं और प्रकरण के अनुसार उसमें परिवर्तन भी हो सकता है। अब हम 'आर्य' शब्द पर व्याकरण के अनुसार विचार करेंगे।

'आर्य' शब्द 'ऋ गतौ' धातु से बनता है। गति का अर्थ ज्ञान, गमन और प्राप्ति के अर्थ में किया गया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में आर्य पद के लिए तद्धित और कृत दो नियम बताए हैं। 'तस्येदम्' (अष्टा.4/3/120) तथा 'तस्यापत्यम्'(अष्टा.4/01/92) के सूत्रों के अनुसार 'अर्य' से 'अण' प्रत्यय लगाकर आर्य पद की

सिद्धि होती है। और कृदन्त में 'ऋ' धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय लगाकर आर्य–अरणीयःगमनीय' प्रापणीयः सिद्ध किया है। पाणिनि के इन सूत्रों से यह सिद्ध होता है कि आर्य वे हैं जो ज्ञान, गमन और प्राप्ति करने और कराने का कार्य करते हैं। जिनका व्यवहार, स्वभाव और कार्य इन तीनों–ज्ञान, गमन और प्राप्ति से सम्बद्ध होता है। आर्य वे हैं जो ज्ञान सम्पन्न, सन्मार्गी और परमानन्द को प्राप्त करने के लिए हमेशा व्रतशाली होते हैं। इससे विदित होता है कि आर्य शब्द गुणवाची है। इसे किसी जाति, समुदाय या वर्ग से जोड़ना मिथ्या को सत्य के रूप में स्थापित करने के समान है।

दास और दस्यु शब्द के अर्थ वेद, संस्कृत व्याकरण और हिन्दी में अलग–अलग अर्थों में किए गए हैं। वेद में दास और दस्यु शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है। यह गुण–कर्म–स्वभाव का वाचक है न कि किसी जाति, समुदाय या वर्ग के अर्थ में। निरुक्त में यास्क कहते हैं–(7/23) –**दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थादुपदस्यन्त्यस्मिन् रसा, उपदास्यति कर्माणि**'– दस्यु शब्द क्षयार्थक 'दस' धातु से बना है अतः जो रसों का क्षय करता है और यज्ञों को नष्ट करता है वह दस्यु है। अर्थात् दस्यु वह है जो रस या श्रेष्ठगुण, कर्म और स्वभाव से हीन होता है। वह श्रेष्ठ कर्मों में बाधा डालने वाला होता है। ऋग्वेद (10/22/08) में दस्यु की परिभाषा इस प्रकार की गई है–**अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः**। अर्थात ऐसा व्यक्ति जो सदगुणी नहीं होता और अहिंसा, दया, सत्य, करुणादि व्रतों का पालन नहीं करता। हम कह सकते हैं–मानवोचित आचरण जो नहीं करता और जो असामाजिक तत्त्व के लक्षणों से पूरित होता है, वह दस्यु कहलाता है। धर्म कार्यों में बाधा डालने वाला, सन्मार्ग पर न चलने वाला और मानवीय सद्गुणों से जो रहित होता है वही दस्यु है। रस खींचने के अर्थ में वेद में बादल को भी दस्यु कहा गया है। ऋग्वेद(01/101/05) में आया है–**इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्** अर्तात् जो इन्द्र दस्युओं को नीचे गिराता है। आलंकारिक विवेचना इस प्रकार अर्थ देती है–सूर्य ताड़न के द्वारा बादलों को भगा देता है। वेद मंत्रों में विद्युत और बादल का आलंकारिक वर्णन है। वेद की रहस्यमयता और आलंकारिकता को न समझने के कारण ही आर्य, दस्यु युद्ध की कल्पना विदेशियों के द्वारा की गई। और इस कल्पना को इतिहास में आर्य–दस्यु युद्ध के रूप में लिखा गया। जिसमें कहा गया कि– आर्य गोरे रंग थे जिन्होंने काले रंग के दस्युओं को युद्ध में परास्त कर दिया। जब कि वेद मंत्र के प्रकरण के अनुसार चमकीली या गौर वर्ण की विद्युत काले रंग के दस्युओं अर्थात् मेघों को अपनी आक्रमणता यानी गर्जन के द्वारा दूर भगा दिया होता है। सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भी समझ सकता है कि आकाश में गर्जना करते हुए जब बिजली चमकती है तब काले रंग के मेघ दूर हट जाते हैं। प्रकरण, भाव, सही अर्थ और व्याकरण की ठीक जानकारी न होने के कारण विदेशी इतिहासकारों ने किस तरह भारतीय समाज को गुमराह किया और भ्रम में डाला इससे हम समझ सकते हैं। जिसके प्रभाव से आज भी हम भारतीय निकल नहीं पाए हैं।

दास और दस्यु शब्द वेद में एक ही अर्थ में आए हैं। अब हिन्दी में इन शब्दों की विवेचना देखते हैं। हिंदी में दास शब्द प्रसंग के अनुसार अनेक अर्थों में प्रयोग किया गया है। दास जातिवाचक है। गुण वाचक है। समुदाय वाचक है। जैसे एक विशेष भक्ति समुदाय के लोग आज भी 'अपने नाम के साथ दास' शब्द का प्रयोग करते हैं। लेकिन ईसाई पादरियों और पश्चिमी इतिहासकारों ने इसे भारत के मूल निवासियों के लिए प्रयोग किया है। इतिहास में मूल निवासी और आक्रमणकारी आर्य की जो कल्पना ईसाई पादरी और पश्चिमी इतिहासकार करते आए हैं उसमें दास और दस्यु के रूप में मूल निवासियों को इंगित किया गया है। कोल–भील, द्रविड़, शूद्र जैसे शब्दों का प्रयोग आज भारत के मूल निवासियों के लिए किया जा रहा है। ये सभी शब्द भारतीय भाषाओं के हैं इसे मैंने इस श्रृखला के प्रथम अंक में विस्तार से दिया है। अंग्रेज ईसाई पादरी जिन शब्दों के माध्यम से शरारत पूर्ण कल्पना करके भारत में क्षेत्र और वर्ग–विभाजन करने का षड्यंत्र किया वे सभी बातें मनुस्मृति में इस प्रकार विद्यमान हैं। मनुस्मृति(10/45) में कहा गया है–**मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः। म्लेच्छबाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यव स्मृताः।।** अर्थात् संसार में उत्तम कर्म न करने के कारण ब्राह्मणादि वर्णों से बहिष्कृत जो जातियाँ हैं, वे चाहे म्लेच्छ भाषाएं बोलती हों, चाहे आर्य भाषा, सब दस्यु हैं। इससे जाहिर होता है कि आर्य भाषा भाषियों, चाहे वे आर्य वर्ग से सम्बन्धित हैं, वे दस्यु हैं। यहाँ ध्यान देने

की बात यह है कि वेद मंत्रों के अर्थ समझने के लिए जहाँ तपस्या की आवश्यकता पड़ती है वहीं पर निरुक्त, पाणिनी व्याकरण की भी गहरी समझ होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त ईश्वरीय अनुकम्पा भी आवश्यक होती है। विदेशी इतिहासकारों के पास न तो निरुक्त की समझ थी, न उन्हें पाणिनि व्याकरण की समझ थी और न तो वे योगी ही थे। और जब दुराग्रह, हठ और धूर्तताई भी संग में हों तो कैसे वेद जैसे गम्भीर विषय को समझा जा सकता है? 'बंदर का जाने अदरक का स्वाद' की कहावत यहाँ सत्य प्रतीत होती है।

वेद में प्रथम बार प्रयोग किए गए आर्य, दास– दस्यु जैसे अनेक शब्दों को वेद व्याकरण के अनुसार समझा जाना चाहिए कि कल्पना के आधार पर? जिस भाषा का शब्द है उस भाषा के व्याकरण के बिना उस शब्द का सही अर्थ हम कैसे समझ सकते हैं? विदेशी इतिहासकार वेद के प्रति इतने अधिक दुराग्रही, द्वेषी और मिथ्यावादी दिखाई पड़ते हैं कि उन्होंने वेद को 'गड़रियों के गीत' कहकर हँसी में उड़ाने की पुरजोर कोशिश की। फिर, ऐसे लोगों से वेद जैसे अति गम्भीर ज्ञानमय और रहस्यमय ईश्वरीय वाणी को गम्भीरता से समझने की आशा कैसे की जा सकती है। यदि किसी पश्चिमी विद्वान् ने गम्भीरता से समझने का प्रयास किया तो उसे तवज्जो ही नहीं दिया गया। इस लिए, जब अंग्रेज इतिहासकार आर्य, दास–दस्यु गुण और भाववाची शब्दों को जातिपरक मानते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं लगती।

स्वतंत्रता के बाद अंग्रेजों द्वारा लिखा गया तथाकथित भारतीय इतिहास को उनके मानस–पुत्र वामपंथी इतिहासकारों ने राजसत्ता के संरक्षण में सर्वमान्यता दिलाने की कोशिश की। जिसमें वे पूरी तरह सफल रहे। अंग्रेजों द्वारा लिखे इतिहास का प्रभाव भारतीय दुराग्रही वामपंथी विद्वानों और इतिहासकारों पर किस तरह सिर चढ़कर बोंलता है, इसे दक्षिण भारत के विद्वान् वी.आर. रामचन्द्र दीक्षितार के भाषण में देखा जा सकता है।

दस्यु और द्रविड़ के बारे में दक्षिण भारत के विद्वान् वी. आर. रामचन्द्र दीक्षितार जिन्होंने मद्रास यूनिवर्सिटी में 29–30 नवम्बर 1940 को दस्यु और द्रविण विषय पर एक व्याख्यान दिया। जिसमें उन्होंने कहा–सत्य तो यह है(जातीय भेद की दृष्टि से) दस्यु आर्येतर नहीं थे। यह मत है कि–दस्यु और द्रविड़ लोग पंजाब और गंगा की घाटी में रहते थे और जब आर्यों ने आक्रमण किया वे आर्यों से पराजित होकर दक्षिण की ओर भाग गए और दक्षिण को ही अपना निवास बना लिया है। दीक्षितार महोदय के इस मत में कितनी सत्यता और प्रमाणयुक्तता है, यह समझना आवश्यक है। इस तरह की मिलती–जुलती बातें काल्डवेल और मैक्समूलर ने शरारत और कल्पना के आधार पर लिखी। दीक्षितार के व्याख्यान का आधार क्या था? दीक्षितार ने जो बात तथाकथित आर्य आक्रमणकारियों और द्रविड़ों के सम्बंध में लिखा है वह उन पश्चिमी इतिहासकारों की कार्बन कापी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। दीक्षितार महोदय यह भूल गए कि वह आर्यों को एक जाति मानकर जो बात कह रहे हैं उस मान्यता में कोई दम नहीं है। तमिलनाडु (दक्षिण) के होने के कारण वह अंग्रेजों की हाँ में हाँ मिला रहे हैं। ध्यान रहे, अंग्रेजों ने दक्षिण भारत को एक शरारत और षड्यंत्र के तहत द्रविड़ समाज कह कर पुकारा और इतिहास में द्रविड़ों को भारत का मूल निवासी सिद्ध करने का कुत्सित प्रयास किया।

विदेशी अंग्रेज पादरी इतिहासकारों ने वैदिक वाङ्गमय, वैदिक व्याकरण और वैदिक दर्शन को निष्पक्ष रूप से समझने का और उसकी महानता और सार्वकालिकता को स्वीकार करने की कभी हिम्मत नहीं दिखाई। उन्हें हरहाल में बाईबिल, ईसाई मत, अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी संस्कृति और अग्रेंजी विचार धारा को ही सर्वोपरि येन केन प्रकारेण सिद्ध करना था। यही कारण है कि निष्पक्ष रूप से आर्य, दास, दस्युादि जैसे अनेक शब्दों को उनके मूलार्थ और व्याकरणिक अभिव्यंजना को समझना भी कभी अभिप्रेत नहीं हुआ।

इस बात को गम्भीरता से समझने की है कि आर्य, दास और दस्यु को जिस रूप में अंग्रेज पादरी और अंग्रेज इतिहासकार विश्व मानस के सम्मुख प्रस्तुत करते रहे हैं, वह नितान्त भ्रम में डालने वाला, काल्पनिक, शरारतपूर्ण और अज्ञानता का भी परिचायक है। यह बात जानने की है कि वैदिक भाषा में शब्दों की उत्पत्ति के नियम, स्थल, प्रतीक, गुण और अर्थ होते हैं। इसलिए शब्द को जानना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उसकी उत्पत्ति, गुण, स्वभाव, अर्थ और प्रतीक को भी जानना आवश्यक है। स्पष्ट है, अंग्रेज और वामपंथी इतिहासकारों ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया। हम

जानते हैं कि जब किसी व्यक्ति, वस्तु, ज्ञान और समाज को कमतर सिद्ध करना होता है तो हम उन्हीं बातों पर ध्यान देते हैं जो उन्हें कमतर सिद्ध कर सके। अंग्रेज इतिहासकारों ने भी यही किया। उन्होंने गवेषणापूर्ण ढंग से समझने और जानने का कभी प्रयास ही नहीं किया कि वैदिक वाङ्गमय, वैदिक व्याकरण और वैदिक दर्शन का उदगम, विस्तार, विचार और तत्त्व की गहराई, गम्भीरता और सर्वहितकारिता किस प्रकार से अखण्ड और पूर्ण है। वैदिक दर्शन, विज्ञान, व्याकरण और समाज शास्त्र के प्रति निश्चित ही विदेशी इतिहासकार दुराग्रही, पक्षपातपूर्ण और षड्यंत्रकारी की भूमिका में दिखाई पड़ते हैं। ऐसे में क्या उनसे आर्य, दास व दस्यु जैसे गुण, स्वभाव और भाव वाची शब्दों को उनके सार्थक परिपेक्ष्य में देखने और समझने की कल्पना हम कर सकते हैं?

इस अंक में बस इतना ही, बाकी अगले अंक में चर्चा करूंगा।*******************

सुखस्य मूलं धर्मः ! धर्मस्य मूलमर्थः ! अर्थस्य मूलं राज्यम् ! राज्यमूलमिन्द्रियजयः ! इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः ! विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा ! वृद्धसेवाया विज्ञानम् ! विज्ञानेनात्मानं संपादयेत् ! संपादितात्मा जितात्मा भवति ! जितात्मा सर्वार्थैस्संयुज्येत !

–चाणक्य सूत्र (१––१०)

__भावार्थ__ – सुख का मूल (कारण) धर्म है ! धर्म का मूल अर्थ है ! अर्थ का मूल राज्य है ! इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना ही राज्य का मूल है ! इन्द्रियों के विजय का मूल विनय है ! वृद्धों की सेवा करना,विनय का मूल है ! वृद्धों की सेवा का मूल विज्ञान है ! इसलिए पुरुष विज्ञान से अपने–आप को संपन्न बनावे ! जो पुरुष विज्ञान से संपन्न होता है, वह अपने ऊपर काबू पा सकता है। अपने ऊपर काबू रखने वाला पुरुष सब अर्थों से संयुक्त हो जाता है !

जी रहे हैं लोग कैसे

जी रहे हैं लोग कैसे, आज इस वातावरण में।
दिन तो चिन्ताओं में बीते, रात कटती जागरण में।।

आंख ही निर्लज्ज हो, तो व्यर्थ घूंघट क्या करेगा।
आदमी नंगा खड़ा है, सभ्यता के आवरण में।।
जी रहे हैं...

सिंह भूखे मर रहे हैं, गीदड़ों घर खीर पकती।
सीखती हैं गीत कोयल, बैठ कौवों की शरण में।।
जी रहे हैं...

जल रहे हैं नीच जुगनूं ,देख यौवन चान्दनी का।
दोष बगुले ढूंढ़ते हैं, हंस के हर आचरण में।।
जी रहे हैं....

राम को तजकर भरत, हैं आज रावण की तरफ।
लक्ष्मण का हाथ रहता, आज हर सीताहरण में।।
जी रहे हैं...

मौत के माथे मुकुट है, जिन्दगी की मांग सूनी।
मस्त हैं सब लोग केवल, उदर के पोषण–भरण में।।
जी रहे हैं...

मर रही इन्सान के, हाथों ही अब इन्सानियत।
"**वेदप्रिय**"अब रुचि नहीं, इसकी रही धर्माचरण में।
जी रहे हैं...

– वेदप्रिय शास्त्री
सीताबाड़ी, केलवाड़ा
राजस्थान

VEDIC SCHOLARS BE CALLED BRAHMINS

– Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

The word 'Brahmin' finds its meaning from Vedic Bhaashyas as given below:

1.(ब्राह्मणः) वेदोपवेदवित्। (यजुर्वेद : 12.96)
(A Brahmin is he who knows the four Vedas and the four Up-Vedas as well.) Aayurveda is the Up-Veda of Rigveda, meaning that a Brahmin should know the medical sciences to be a selfless Physician. Dhanurveda is the Up- Veda of Yajurveda, meaning that the Brahmin should know politics well, and he should be able to teach real politics in the interest of the country. Gaandharvaveda is the Up-Veda of Samveda, meaning that the Brahmin should know music to recite Samveda and other hymns. Arthaveda is the Up- Veda of Atharvaveda, meaning that the Brahmin should know economics and the uses of domestic industry (Sh-Vidya).

2.(ब्राह्मणाः)व्याकरणवेदेश्वरवेत्तारः।(ऋ1.164.45)
(Brahmins are they who know God, Vedas and Sanskrit Grammar.)
Sanskrit Grammar is not merely a set of rules for the language. It's more than this. Sanskrit comprises both type of words- Vedic (found in the Vedas) and Laukik (to be used in the world). Sanskrit Grammar teaches us the use of words according to the Vedas, according to the worldly relations and according to the code of conduct. A Brahmin should be well-conversant in all these fields.)

3. (ब्राह्मणः) वेदेश्वरविद् अनयोः सेवक उपासको वा। (यजुर्वेद : 31.11)
(A Brahmin must know and devote to Vedas. He must know and worship God.) A true Brahmin knows God. He knows that God is omnipresent, merciful, justiceful and fountain of knowledge, love, bliss etc. He knows how God is different from individual Souls. He knows how God is separate from the Matter and its properties. The Brahmin not only knows God, he prays to and worship him. He does a selfless worship. He prays to him but for the country, for the entire humanity, for all living beings and never for himself alone.

A true Brahmin knows the Veda, i.e. the four Vedas combined. He knows that Veda is the voice of God, that Veda is the voice of God alone, and that only Veda is the voice of God. He not only knows

Vedas but really understands their meaning. He obeys andfollows the Vedas. He applies their saying to what he eats, what he wears, what he earns, what he speaks, what he teaches and what he lives. He applies the Vedas on the economics, politics, defence of the country and character of the nation. He applies the Vedas to the birth and death of individuals, to the marriage and remarriage of couples, and to the bond and liberation of souls.

He serves God and serves the Vedas. Service to God means service to the good people, service to the hungry, needy and injured, and service to the birds and animals. Service to God means following the God's voice and never disobeying Him. Service to the Vedas means to live to their commands, to explain their real and complete meaning, to remove each and every confusion over them, to clarify all mis-conceptions in their name, to prepare a long line of their students, and to give life for their cause.

In modern India, Brahmins are a birth-based community. In Ancient India, only Vedic Scholars were called Brahmins. In the middle period, the community became hereditary. Son of a Scholar Brahmin was called a Brahmin without studying Vedas. The system continues to the day. The tradition has become so thick and strong that it does not allow to be overhauled. A person is called Agnihotri even if he has nothing to do with agnihotra or havan. Another person does not read Vedic hymns but he is called Tripathi. Still another person is called Upadhyay without teaching Vedas. The word 'Brahm' continues to carry two meanings- God and Veda. Its ally word ' Brahmin' carries two meanings too- 'Knower and worshipper of God' and 'scholar and teacher of Veda'. This word 'Brahmin' should not be used as a misnomer. It should rather be used for the persons knowing Veda and worshipping God.

Arya Samaj is an institution that represents Vedic culture and society. In Arya Samaj the Vedic Scholars are called Brahmins or Pandit irrespective of their birth caste. Only such persons are so called and not their sons or relations. Pandit Ganga Prasad 'Upadhyay' and his son Dr. Satya Prakash (later turned a Samnyasin) were Vedic scholars and they were called Brahmins or Pandits. However the later generations are called by their caste surnames. Swami Shraddhanand , Mahatma Hansraj, Lala Lajpat Rai, Mahatma Narayan Swami, Mahatma Anand Swami etc. were,and Prof. Rajendra Prasad 'Jijnasu', Prof. Jwalant Kumar Shastri, Pandita Suryaa Devi Chaturvedaa, Swami Ram Dev etc. are Vedic Scholars.All of them have been called Brahmins or Pandits. Swami Satyapati Ji is a Vedic Scholar and a Samnyasin too. He is called aBrahmin or Pandit, although he was born into a

Muslim family. This system working well in Arya Samaj. This tradition should be followed by entire society.

'Brahmin' is apious word. It is free from the three cravings, namely, Putraishanaa, Vittaishanaa and Lokaishanaa.

A Brahmin is a person who eats fruits & vegetables, can store grains but only for a few months, can have money but for the basic necessaries of life, and does not enjoy individual property for joy.

A Brahmin must not fear anybody, must not be partial to anybody and must not bow before anybody. He must speak the truth, dispense with justice , and realise God. Hense he must refrain from individual collections and personal relations. Taittiriya Aaranyaka (1.2.6.7) says that '**दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः**'(The orde of Brahmins is godly & pious.) Taandya Brahmana(1.6.1) says that '**ब्राह्मणो मनुष्याणां मुखम्**'(The Brahmin is the mouth of human society.) Hence a '**कुम्भीधान्यः**' pious Vedic Scholar should be called Brahmin.

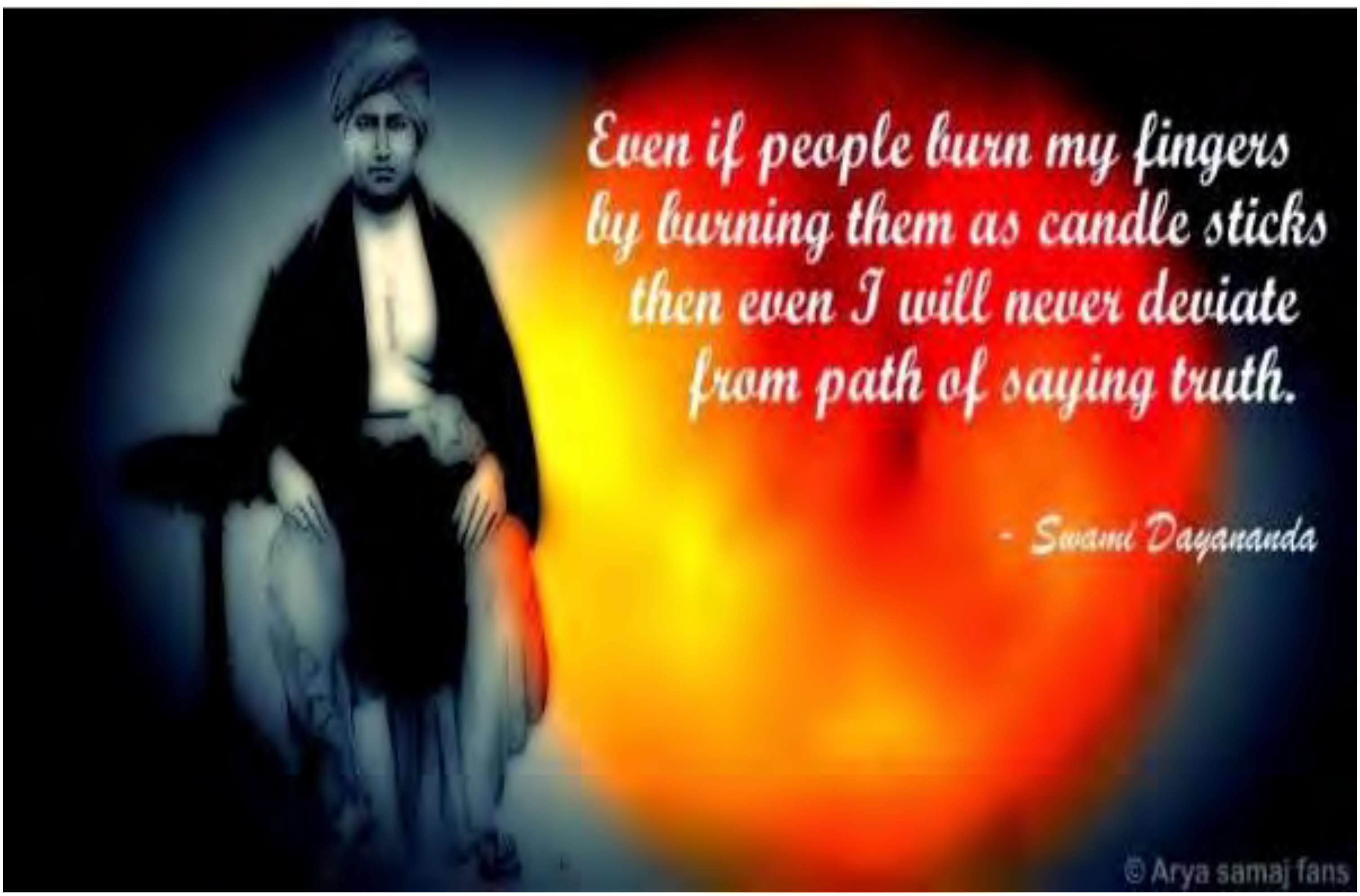

वैदिक वाङ्.गमय की सार्वकालिकता और वर्तमान लेखन की दशा–दिशा

– डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल

वैदिक वाङ्.गमय किसी एक देश, समाज, वर्ग, जाति, वर्ण या समुदाय के लिए नहीं प्रत्युत मानव मात्र के लिए है। यह सार्वजनीन तथा सार्वकालिक ज्ञानकोश है जो हजारों वर्षों से मानव–समाज को सुख–शान्ति प्रदान करता रहा और उसका मार्गदर्शन करता रहा। वेदों में इतने प्रकार के ज्ञान–विज्ञान, धर्म, अध्यात्म, व्यवहार, प्रेरणाएं, उपदेश, मार्गदर्शन, दर्शन, गणित, आयुर्वेद, शिक्षा, विद्या और अन्य अनेक विषयों की भरमार है तथा चन्द्रमा, सूर्य, वर्षा, वृक्षों, नदी, समुद्र, पर्वत, आहार–विहार से लेकर पुरुष–स्त्री सम्बन्ध, परिवार, सामाजिक जीवन, काव्य–सौंदर्य, अलंकार एवं भाषा की प्राजंलता है। जो अन्य किसी विश्व–साहित्य में समग्र रूप से नहीं है। वैदिक वाङ्.गमय का ठीक–ठीक सन्तुलित और मर्यादित उपयोग किया जाये तो विश्व की लगभग सभी प्रकार की समस्याओं, संकटों, विपदाओं, प्राकृतिक आपदाओं, दुखों और दुर्वत्तियों का समाधान हो सकता है, साथ ही शोध वैदिक साहित्य के अध्येताओं का मनोरंजन होकर उनके लिए आनन्द तथा समृद्धि का द्वार खुलता है। वैयक्तिक जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय जीवन और सार्वभौमिक जीवन का आधार वेद में बताई गई विद्या में निहित है। वेद में वर्णित सूत्र हजारों वर्षों तक देश–विदेशों में परीक्षित तथा प्रमाणित हो चुके हैं और कवियों, लेखकों, विद्वानों, पण्डितों ने इति–इति कहकर उन्हें मानव जाति के लिए महामंत्र माना। चारों वेदों के 20 हजार 516 मंत्रों में मानव जाति का कल्याणकारी पथ समावेश कर दिया गया है। चारों वेदों में मुख्यतः चार प्रकार के विषय समाहित किये गये हैं। ऋग्वेद में प्रार्थनाएं, ज्ञानकाण्ड और ब्रह्मचर्य आश्रम विषय, यजुर्वेद में कर्मकाण्ड एवं गृहस्थाश्रम विषय, सामवेद में उपासना, उपभोग, कर्मकाण्ड और वानप्रस्थाश्रम विषय और अथर्ववेद में अर्थशास्त्र, ज्ञान–विज्ञान युद्धशास्त्र एवं संन्यासाश्रम विषय। चारों वेदों के चार उपवेद हैं–ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का स्थापत्य या सर्पवेद। इसी प्रकार वेदों के छः उपांग हैं–शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त (भाषा–विधान), ज्योतिष और कल्प (अवधि)।

वैदिक साहित्य का अध्ययन छः दर्शनशास्त्रों के बिना अधूरा माना जाता है। वे हैं–कपिल का सांख्यदर्शन, पतंजलि का योगदर्शन, गौतम का न्यायदर्शन, कणाद का वैशेषिक, जैमिनी का पूर्व मीमांसा तथा व्यास का उत्तर मीमांसा दर्शन। बाद में वैदिक वाङ्.गमय का अनंत विस्तार होता गया जिसमें संहिताओं, स्मृतियों, आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों की रचना हुई। आर्य समाज के संस्थाक महर्षि दयानन्द सरस्वती का अभिमत है कि चारों वर्णों, तीनों लोकों, चारों आश्रमों, भूत, भविष्य और वर्तमान की सभी प्रकार की कल्याणकारी विद्याएँ वेदों से ही निसृत हुई हैं जिससे मनुष्य अविद्या–अंधकार, भ्रमजाल से छूटकर विद्या–विज्ञान–रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहे और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जाये। वे कहते हैं कि वेदों की ओर लौटो। महर्षि श्री अरविन्द के अनुसार वेद वह ज्ञान है जिसे पाने के लिए मानव का समस्त चिन्तन–मनन प्रयत्नशील है। अरबी विद्वान लावी के अनुसार परमेश्वर ने हिन्दुस्तान में अपने पैगम्बरों अर्थात् ऋषियों के हृदयों में इन चारों (वेदों) का प्रकाश किया। वास्तव में ईश्वर से बिना एकात्म हुए ऐसा साहित्य सृजन करना असम्भव है। दाराशिकोह के अनुसार वेदों में सारी मानवता के लिए एकता का संदेश है। सैकड़ों विदेशी विद्वानों जैसे नोबेल पुरस्कार विजेता मैटरलिंक, अमरीकी विचारक थोरियो, जर्मन दार्शनिक शोपरहार ने वेदों को ज्ञान–विज्ञान, धर्म, अध्यात्म और मानव संस्कृति का अद्भुत वाङ्.गमय स्वीकार किया है। बाद के वैदिक वाङ्गमय में विशेषतः ब्राह्मण ग्रन्थों में विषयवस्तु का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक गठित, संश्लिष्ट और लाघवता से किया गया है। कहीं बड़ी सरल शैली और स्पष्ट भाषा में लिखा है, किन्तु कहीं–कहीं संश्लिष्टता और

लाघवता के कारण अर्थ को समझना भी कठिन होता है विशेषतः उपनिषदों में। कहीं–कहीं साधारण जीवन से सम्बन्धित उपमाएं हैं जैसे तपे लोहे के नरम होने के समान वाणी का विनम्रतायुक्त होना। ऐसी ही वेदों में उपमाएं, अलंकार, रूपक हैं जो सभी कालों में, सभी देशों में प्रयुक्त हैं और समझी जा सकती हैं जो वनस्पति, जल, सूर्य, चन्द्रमा, पर्यावरण आदि से सम्बन्धित हैं।

वर्तमान लेखन की दशा–दिशा –

वैदिक साहित्य में कर्मतत्व की प्रधानता है और निष्ठापूर्वक सत्कर्म पर चलने का निर्देश दिया गया है जो सार्वकालिक है और वर्तमान लेखन में भी सीमित रूप में यही प्रयास कर रहा है। वर्तमान लेखन का अर्थ अधुनातन लेखक से है। वर्तमान निबन्धों में ललित–निबन्ध विशेषतः उभरे हैं पर ये वैदिक वाड्.गमय से भिन्न हैं क्योंकि इनमें शिल्प पर अधिक जोर है जबकि वैदिक वाड्.गमय समाज–सुधार की ओर सर्वदा दीपशिखा की भांति प्रकाश दे रहा है। हिन्दी निबन्ध में व्यंग्य का विकास तेजी से हो रहा है। अतः निबन्ध–लेखन समाज पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ है। वर्तमान निबन्ध–लेखन समाज तथा युवा–पीढ़ी के साथ स्वयं को संलिप्त करने में असमर्थ है। अतः वह समाज की नब्ज पकड़ने में असमर्थ है। इस कारण वर्तमान हिन्दी लेखन तेजी से समाज से कट रहा है। उसमें न तो समाज का ही प्रतिबिम्ब है और ना ही समाज का मार्ग–दर्शन और न ही समाज–सुधार की दिशा में जोरदार अपील। पश्चिमी आलोचना–शास्त्र से प्रभावित आलोचकों, समालोचकों तथा समीक्षकों ने हिन्दी–साहित्य को जैसे अपने समूह में कैद कर लिया है। फलतः हिन्दी लेखन में प्रयोग, परम्परा, आधुनिकता, समसामयिकता, रचना–प्रक्रिया, अर्थतन्त्र, छन्द, सम्प्रेषण, भाषा, कल्पना, स्वायत्तता, कलापक्ष महत्वपूर्ण हो गये तथा विषय–वैविध्य एवं लोकसंग्रहात्मक प्रवृत्ति गौण होती चली गई। अज्ञेय जी जैसे बहुत से लेखक वर्तमान में नहीं हैं जो वैदिक वाड्.गमय की पृष्ठभूमि में वर्तमान समाज का मार्गदर्शन करें।

मार्क्स से प्रभावित साहित्य में साम्राज्य विरोधी और सामन्त विरोधी परम्परा चली जैसा कि नामवर सिंह ने अपनी कृति कविता के नये प्रतिमान में रेखांकित किया है। पर वे भारत के परिवेश में मार्क्सवादी दर्शन को स्थापित न कर सके। आज आवश्यकता है भारतीय मार्क्सवाद की जैसे भूमि–सुधारों पर जोर देने की। हिन्दी गद्य को वर्तमान में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार चलने की आवश्यकता है। जो शास्त्र चिन्तन में खोये, प्राचीन और अर्वाचीन मौलिक उद्भावनाओं से आतंकित न हो बल्कि स्वानुभूत मूल्यों के आधार पर वैदिक वाड्.गमय जैसा साहित्य जनता के सामने परोसे ताकि इस सांस्कृतिक संक्रमण युग में जनता के मानस को शांति एवं विश्राम उपलब्ध हो। कुछ ऐसा ही युगान्तकारी कहानी और उपन्यास लेखन सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने किया। प्रेमचन्द आज भी समाज के लिए प्रासंगिक और प्रेरणा स्रोत हैं।

ऐसी ही त्रासदी कुछ–कुछ हिन्दी–नाट्य रचना के साथ हुई। अब नाटकों के दृश्य पक्ष की कलात्मकता विकसित हो रही है। आशा है कि पौराणिक पृष्ठभूमि के नाटक, अंधा युग, शकुन्तला, फिर से रंगमंच पर आकर दर्शकों तथा पाठकों को आकर्षित करेंगे क्योंकि प्रत्येक भारतीय अभी भी भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत है। वह कभी भी अपने वेदों, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता से अलग अपने अस्तित्व की कल्पना नहीं करता। यह जरूर है कि वैदिक वाड्.गमय की सहज उपलब्धता के अभाव में पाठक भारत के ऐतिहासिक प्रसंगों की ओर झुक रहा है क्योंकि आज राष्ट्रीयता का बोध सर्वोपरि होकर उभर रहा है। वेदों में भी मातृभूमि वंदना जैसे अनेक राष्ट्रीयता से ओतप्रोत मंत्र हैं जो वर्तमान में भी प्रांसगिक हैं।

राजनैतिक विद्वेष, अनिश्चिता एवं नौकरशाही की अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार संलिप्तता तथा संवेदनहीनता के कारण जनता स्वयं राष्ट्र की संरक्षा तथा प्रभुसत्ता की रक्षा करने को प्रांसगिक है। वह भौतिक सुखों का आनन्द लेने के लिए भी उद्यत है जो ऋग्वेदीय आर्य संस्कृति में भी था। खाना–पीना, मनोरंजन, स्त्री में वैदिक साहित्य में रुचि दिखाई है। सभी के अनुरूप भोज्य पदार्थ, भोजन के पात्र, वास्तुकला, चिकित्साशास्त्र में प्रगति हुई प्रतीत होती है और जीवन के प्रति आशान्वित दृष्टिकोण चारों वेदों में मिलता है। यही वर्तमान पीढ़ी का भी पाथेय तथा ध्येय है। यौन व्यवहार के बारे में भी वैदिक साहित्य में एक

अजीब विरोधाभास पर खुलापन है। स्त्रियों के प्रति कठोरता है किन्तु प्रजनन सम्बन्धी विवरणों में आश्चर्यजनक वर्णन है। आज का यौनपरक साहित्य भी उन तथ्यों के सामने खड़ा नहीं है। आज का कोई उपन्यास विस्तार से नहीं बताता कि कैसे गर्भाधान करके पुत्र–प्राप्ति हो जिसका वेदों में जोर है तथा सत्यार्थ प्रकाश में स्पष्ट रूप से वर्णित है।

प्रजापति के कृत्यों के विवरण ने वर्तमान कहानी एवं उपन्यास के यौन खुलापन को मात किया है। अतः वर्तमान लेखन वैदिक वाङ्.गमय से बहुत कुछ प्रेरणा ले सकता है और बहुत कुछ योगबोध के अनुसार अस्थायी रूप से ही सही, उपेक्षित कर सकता है। उदाहरणार्थ वेद–साहित्य में स्त्रियों का जीवन हर प्रकार से मर्यादित करने की चेष्टा है। वे बड़ों से लजाती हैं। प्रातः से सायंकाल तक परिश्रम करती हैं। गृहिणी होना सम्मान की बात है किन्तु उनको प्रत्येक स्तर पर पुरुषों के आश्रित होने का ही विधान है। वर्तमान काल में यह पूर्णरूपेण ग्राहय नहीं है। इसी प्रकार राज्य के प्रशासन, युद्धकला सम्बन्धी विभिन्न आख्यान हैं, जो आज भी राष्ट्रधर्म के परिपालन में सहायक हैं। वैदिक वाङ्.गमय हमारी सांस्कृतिक–साहित्यिक विरासत है। वैदिक साहित्य की सार्वकालिकता से अभिभूत होकर हिन्दी साहित्य जगत् के सूर्य गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी प्रमुख कृति रामचरितमानस को निगमागम सम्मत कहा। वर्तमान लेखक उसके किसी अंश को स्पर्श करके शाश्वत साहित्य की रचना कर सकते हैं जैसे रवीन्द्रनाथ टैगोर प्रकृति को ईश्वर तुल्य करके अमर हो गये, जयशंकर प्रसाद कामायनी में सृष्टि की रचना दिखाकर, निराला राम की शक्तिपूजा में दार्शनिक औदात्य और सामाजिक विद्रूपता तथा पंत प्रकृति में आत्मा के दर्शन करके अमर हो गये। वस्तुतः हिन्दी साहित्य की छायावादी काव्यधारा अन्तः सृष्टि और बाह्य सृष्टि में एकता स्थापित करती है।जहाँ तक दार्शनिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है छायावादी काव्य सर्ववाद कर्मयोग, वेदान्त, शैव दर्शन, अद्वैतवाद आदि वैदिक पुराधाओं के सिद्धान्तों को ही व्यक्त करता दिखायी देता है।

यद्यपि वर्तमान लेखन में प्रयास चल रहा है जैसा मैंने रामचरितमानस–नाट्यरूप तथा भगवद्गीता–नाट्य रूप लिखकर किया। वर्तमान लेखकों में नरेन्द्र कोहली ने **अभ्युदयः राम कथा** लिखी और गोविन्द चन्द पाण्डे ने वेदों का सरलीकृत रूप प्रस्तुत किया। ऐसे अनेक हिन्दी लेखक हैं जिन्होंने वेदों के मंत्रों का अर्थ और सार प्रस्तुत किया। हिन्दी लेखकों का वेदों पर काफी काम शेष है। उन्हें मीलों दूर जाना है। हिन्दी साहित्य में ऐसे लोक का पृथक वर्गीकरण हो ताकि उन्हें समुचित मान्यता प्राप्त हो। वैदिक वाङ्.गमय का संरक्षण एवं प्रसारण के लिए मोतीलाल बनारसीदास तथा गीताप्रेस गोरखपुर जैसे प्रकाशकों ने महती योगदान दिया है जो प्रशंसनीय है। आशा है कि सरकारें भी अपनी ओर से कुछ करेंगी। वेदों से निस्तृत इन सिद्धान्तों का अनुपालन करके हमारी पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है।

लेखक शाश्वत होना चाहता है और वह वेदों को पढ़कर तथा उनका अनुपालन करके ही हो सकता है क्योंकि वेद देश सार्वकालिक हैं। वैदिक वाङ्.गमय में लोकरंजन एवं लोकसंग्रह समान रूप से है। वेदों में **वसुधैव कुटुम्बकम्** जैसे कई सिद्धान्त हैं जो वर्तमान काल की सामाजिक, दार्शनिक तथा साहित्यिक अवधारणाओं से आगे हैं। ******

दयानन्द वंदना

दयानन्द तुमको नमन, शत – शत बारम्बार।
ॲंधियारे को चीर कर, दिखलाया उजियार।।

जिसने जीवन में लिया, दयानन्द को ढाल ।
पल भर में उसके कटे, सघन अमा के जाल।।

कदम–कदम पर थी बँधी, पाखंडों की डोर।
दयानंद ने काट तम, जग – हित खींची भोर।।

कभी धर्म की चांदनी, कभी वेद की धूप ।
दयानन्द का रूप तो, कैसा अदभुत रूप !!

दसों दिशा रोशन हुईं, कटे तिमिर के पाश।
दयानन्द ने क्या रचा, वह सत्यार्थ प्रकाश !!

दयानन्द थे गर्जना, आजादी के शंख।
तेज आंधियों में दिए, उड़ने को सौ पंख।।

कभी सोचता बैठ मन, अगर न होते आप ।
मानव को मिलती कहां, दया–धर्म की ताप।।

ऋषिवर ने जग को दिया, पढ़ा वेद का पाठ ।
वरना पढ़ता आज भी, सोलह दूने आठ।।

फैलाई नव चांदनी, फैलाई नव धूप ।
ऋषिवर को छू–छू हुए, अनगिन पारस रूप।।

– भारत भूषण आर्य

शूरता की मिसाल : पंडित लेखराम आर्य मुसाफिर

–डॉ. विवेक आर्य

पंडित लेखराम इतिहास की उन महान हस्तियों में शामिल हैं जिन्होंने धर्म की बलिवेदी पर प्राण न्योछावर कर दिए। जीवन के अंतिम क्षण तक आप वैदिक धर्म की रक्षा में लगे रहे। आपके पूर्वज महाराजा रंजित सिंह की फौज में थे इसलिए वीरता आपको विरासत में मिली थी। बचपन से ही आप स्वाभिमानी और दृढ विचारों के थे। एक बार आपको पाठशाला में प्यास लगी। मौलवी से घर जाकर पानी पीने की इजाजत मांगी। मौलवी ने जूठे मटके से पानी पीने को कहाँ। आपने न दोबारा मौलवी से घर जाने की इजाजत मांगी और न ही जूठा पानी पिया। सारा दिन प्यासा ही बिता दिया। पढ़ने का आपको बहुत शौक था। मुंशी कन्हैयालाल अलाखधारी की पुस्तकों से आपको स्वामी दयानन्द जी का पता चला। अब लेखराम जी ने ऋषि दयानन्द के सभी ग्रंथो का स्वाध्याय आरम्भ कर दिया। पेशावर से चलकर अजमेर स्वामी दयानन्द के दर्शनों के लिए पंडित जी पहुँच गए। जयपुर में एक बंगाली सज्जन ने पंडित जी से एक प्रश्न किया था की आकाश भी व्यापक हैं और ब्रह्मा भी, दो व्यापक किस प्रकार एक साथ रह सकते हैं ? पंडित जी से उसका उत्तर नहीं बन पाया था। पंडित जी ने स्वामी दयानन्द से वही प्रश्न पुछा – स्वामी जी ने एक पत्थर उठाकर कहा की इसमें अग्नि व्यापक है या नहीं? मैंने कहा की व्यापक है, फिर कहा की क्या मिटटी व्यापक है? मैंने कहा की व्यापक है, फिर कहा की क्या जल व्यापक है? मैंने कहाँ की व्यापक है. फिर कहा की क्या आकाश और वायु ? मैंने कहा की व्यापक है, फिर कहा की क्या परमात्मा व्यापक है? मैंने कहा की व्यापक है। फिर स्वामी जी बोले यहाँ देखो! कितनी चीजें हैं परन्तु सभी इसमें व्यापक हैं। वास्तव में बात यही है की जो जिससे सूक्ष्म होती है वह उसमें व्यापक हो जाती है। ब्रह्म चूँकि सबसे अति सूक्ष्म है इसलिए वह सर्वव्यापक है। यह उत्तर सुन कर पंडित जी की जिज्ञासा शांत हो गयी। आगे पंडित जी ने पुछा, जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद प्रमाण बताएँ। स्वामी जी ने कहा यजुर्वेद का ४० **वां** अध्याय सारा जीव ब्रह्म का भेद बतलाता है। इस प्रकार अपनी शंकाओं का समाधान कर पंडित जी वापस आकार वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में लग गए।

शुद्धि के रण में

कोट छुट्टा डेरा गाजी खान (अब पाकिस्तान) में कुछ हिन्दू युवक मुसलमान बनने जा रहे थे। पंडित जी के व्याख्यान सुनने पर ऐसा रंग चढ़ा की आर्य बन गए और इस्लाम को तिलांजलि दे दी। इनके नाम थे महाशय चोखानंद, श्री छबीलदास व महाशय खूबचंद जी। जब तीनों आर्य बन गए तो हिन्दुओं ने उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया। कुछ समय के बाद महाशय छबीलदास की माता का देहांत हो गया। उनकी अर्थी को उठाने वाले केवल ये तीन ही थे। महाशय खूबचंद की माता उन्हें वापस ले गयी। आप कमरे का ताला तोड़ कर वापिस संस्कार में आ मिले। तीनों युवकों ने वैदिक संस्कार से दाह कर्म किये। पौराणिकों ने एक चाल चली। यह प्रसिद्ध कर दिया की आर्यों ने माता के शव को भून कर खा लिया है। यह तीनो युवक मुसलमान बन जाये तो हिन्दुओं को कोई फर्क नहीं पड़ता था परन्तु पंडित लेखराम की कृपा से वैदिक धर्मी बन गए, तो दुश्मन बन गए। इस प्रकार की मानसिकता के कारण तो हिन्दू आज भी गुलामी की मानसिकता में जी रहे हैं।

जम्मू के श्री ठाकुरदास मुसलमान होने जा रहे थे। पंडित जी उनसे जम्मू जाकर मिले और उन्हें मुसलमान होने से बचा लिया।

१८९१ में हैदराबाद सिंध के श्रीमंत सूर्यमल की संतान ने इस्लाम मत स्वीकार करने का मन बना लिया। पंडित पूर्णानंद जी को लेकर आप हैदराबाद पहुंचे। उस धनी परिवार के लड़के पंडित जी से मिलने के लिए तैयार नहीं थे। पर आप कहाँ मानने वाले थे। चार बार सेठ जी के पुत्र मेवाराम जी से मिलकर यह आग्रह किया की मौलवियों से उनका

शास्त्रार्थ करवा दे। मौलवी सय्यद मुहम्मद अली शाह को तो प्रथम बार में ही निरुत्तर कर दिया। उसके बाद चार और मौलवियों से पत्रों से विचार किया। आपने उनके सम्मुख मुसलमान मौलवियों को हराकर उनकी धर्म रक्षा की।

वहीं सिंध में पंडित जी को पता चला की कुछ युवक ईसाई बनने वाले हैं। आप वहा पहुँच गए और अपने भाषण से वैदिक धर्म के विषय में प्रकाश डाला। एक पुस्तक आदम और इव पर लिख कर बांटी जिससे कई युवक ईसाई होने से बच गए।

गंगोह जिला सहारनपुर की आर्यसमाज की स्थापना पंडित जी से दीक्षा लेकर कुछ आर्यों ने १८८५ में करी थी। कुछ वर्ष पहले तीन अग्रवाल भाई पतित होकर मुसलमान बन गए थे। आर्य समाज ने १८६४ में उन्हें शुद्ध करके वापिस वैदिक धर्मी बना दिया। आर्य समाज के विरुद्ध गंगोह में तूफान ही आ गया। श्री रेह्तूलाल जी भी आर्यसमाज के सदस्य थे। उनके पिता ने उनके शुद्धि में शामिल होने से मना किया, पर वे नहीं माने। पिता ने बिरादरी का साथ दिया। उनकी पुत्र से बातचीत बंद हो गयी। पर रेह्तुलाल जी कहाँ मानने वाले थे। उनका कहना था, गृह त्याग कर सकता हूँ पर आर्यसमाज नहीं छोड़ सकता हूँ। इस प्रकार पंडित लेखराम के तप का प्रभाव था कि उनके शिष्यों में भी वैदिक सिद्धांत की रक्षा हेतु भावना कूट–कूट कर भरी थी।

घासीपुर जिला मुज्जफरनगर में कुछ चौधरी मुसलमान बनने जा रहे थे। पंडित जी वह एक तय की गयी तिथि को पहुँच गए। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी और साथ में मूछ भी थी। एक मौलाना ने उन्हें मुसलमान समझा और पूछा – क्यों जी! यह दाढ़ी तो ठीक है पर इस मूछ का क्या राज है? पंडित जी बोले, दाढ़ी तो बकरे की होती है मूछ तो शेर की होती है। मौलाना समझ गया कि यह व्यक्ति मुसलमान नहीं है। तब पंडित जी ने अपना परिचय देकर शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। सभी मौलवियों को परास्त करने के बाद पंडित जी ने वैदिक धर्म पर भाषण देकर सभी चौधरियों को मुसलमान बनने से बचा लिया।

१८६६ की एक घटना पंडित लेखराम के जीवन से हमें सर्वदा प्रेरणा देने वाली बनी रहेगी। पंडित जी प्रचार से वापिस आये तो उन्हें पता चला कि उनका पुत्र बीमार है। तभी उन्हें पता चला कि मुस्तफाबाद में पांच हिन्दू मुसलमान होने वाले हैं। आप घर जाकर दो घंटे में वापिस आ गए और मुस्तफाबाद के लिए निकल गए। आपने कहा कि मुझे अपने एक पुत्र से जाति के पांच पुत्र अधिक प्यारे हैं। पीछे से आपका सवा साल का इकलोता पुत्र चल बसा। पंडित जी के पास शोक करने का समय कहाँ था। आप वापिस आकार वेद प्रचार के लिए वजीराबाद चले गए।

पंडित जी की तर्क शक्ति गजब थी। आपसे एक बार किसी ने प्रश्न किया की हिन्दू इतनी बड़ी संख्या में मुसलमान कैसे हो गए? आपने सात कारण बताये। १. मुसलमानी आक्रमण में बलातपूर्वक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया। २. मुसलमानी राज में जर, जोरू व जमीन देकर कई प्रतिष्ठित हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया। ३. इस्लामी काल में उर्दू, फारसी की शिक्षा एवं संस्कृत की दुर्गति के कारण बने। ४. हिन्दुओं में पुनर्विवाह न होने के कारण व सती प्रथा पर रोक लगने के बाद हिन्दू औरतों ने मुसलमान के घर की शोभा बढाई तथा अगर किसी हिन्दू युवक का मुसलमान स्त्री से सम्बन्ध हुआ तो उसे जाति से निकाल कर मुसलमान बना दिया गया। ५. मूर्तिपूजा की कुरीति के कारण कई हिन्दू विधर्मी बने। ६. मुसलमानी वेश्याओं ने कई हिन्दुओं को फंसा कर मुसलमान बना दिया। ७. वैदिक धर्म का प्रचार न होने के कारण मुसलमान बने।

अगर गहराई से सोचा जाये तो पंडित जी ने हिन्दुओं को जाति रक्षा के लिए उपाय बता दिए हैं, अगर अब भी नहीं सुधरे तो हिन्दू कब सुधरेंगे।

पंडित जी और गुलाम मिर्जा अहमद

पंडित जी के काल में कादियान, जिला गुरुदासपुर पंजाब में इस्लाम के एक नए मत की वृद्धि हुई जिसकी स्थापना मिर्जा गुलाम अहमद ने करी थी। इस्लाम के मानने वाले मुहम्मद साहिब को आखिरी पैगम्बर मानते हैं। मिर्जा ने अपने आपको कभी कृष्ण, कभी नानक, कभी ईसा मसीह कभी इस्लाम का आखिरी पैगम्बर घोषित कर दिया तथा अपने नवीन मत को चलाने के लिए नई–नई भविष्यवाणियाँ और इल्हामों का ढोल पीटने लगा।

एक उदहारण मिर्जा द्वारा लिखित पुस्तक "वही हमारा कृष्ण" से लेते हैं। इस पुस्तक में लिखा हैं, उसने (ईश्वर ने) हिन्दुओं की उन्नति और सुधार के

लिए निष्कलंकी अवतार को भेज दिया है जो ठीक उस युग में आया है जिस युग की कृष्ण जी ने पहिले से सुचना दे रखी है। उस निष्कलंक अवतार का नाम मिर्जा गुलाम अहमद है, जो कादियान जिला गुरुदासपुर में प्रकट हुए हैं। खुदा ने उनके हाथ पर सहस्त्रों निशान दिखाये हैं। जो लोग उन पर ईमान लाते हैं उनको अल्ला ताला बड़ा नूर बख्शता है। उनकी प्रार्थनाएं सुनता है और उनकी सिफारिश पर लोगों के कष्ट दूर करता है। प्रतिष्ठा देता है। आपको चाहिए कि उनकी शिक्षाओं को पढ़ कर नूर प्राप्त करें। यदि कोई संदेह हो तो परमात्मा से प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर! यदि यह व्यक्ति जो तेरी ओर से होने की घोषणा करता है और अपने आपको निष्कलंक अवतार कहता है। अपनी घोषणा में सच्चा है तो उसके मानने की हमें शक्ति प्रदान कर और हमारे मन को इस पर ईमान लाने के लिए खोल दे। पुनः आप देखेंगे कि परमात्मा अवश्य आपको परोक्ष निशानों से उसकी सत्यता पर निश्चय दिलवाएगा। तो आप सत्य हृदय से मेरी और प्रेरित हो और अपनी कठिनाइयों के लिए प्रार्थना कराये। अल्ला ताला आपकी कठिनाइयों को दूर करेगा और मुराद पूरी करेगा। अल्लाह आपके साथ हो। (पृष्ठ ६,७.८ वही हमारा कृष्ण।)

पाठकगण, स्वयं समझ गए होंगे कि किस प्रकार मिर्जा अपनी कुटिल नीतिओं से मासूम हिन्दुओं को बेवकूफ बनाने की चेष्ठा कर रहा था पर पंडित लेखराम जैसे रणवीर के रहते उसकी दाल नहीं गली।

पंडित जी सत्य असत्य का निर्णय करने के लिए मिर्जा के आगे तीन प्रश्न रखे –

१. पहले मिर्जा जी अपने इल्हामी खुदा से धारावाही संस्कृत बोलना सीख कर आर्यसमाज के दो सुयोग्य विद्वानों पंडित देवदत शास्त्री व पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा का संस्कृत वार्तालाप में नाक में दम कर दे।

२. ६ दर्शनों में से सिर्फ तीन के आर्ष भाष्य मिलते हैं। शेष तीन के अनुवाद मिर्जा जी अपने खुदा से मंगवा लें तो मैं मिर्जा के मत को स्वीकार कर लूँगा।

३. मुझे २० वर्ष से बवासीर का रोग है। यदि तीन मास में मिर्जा अपनी प्रार्थना शक्ति से उन्हें ठीक कर दे तो में मिर्जा के पक्ष को स्वीकार कर लूँगा।

पंडित जी ने उससे पत्र लिखना जारी रखा। तंग आकर मिर्जा ने लिखा कि यहीं कादियान आकार क्यों नहीं चमत्कार देख लेते। सोचा था कि न पंडित जी का कादियान आना होगा और बला भी टल जाएगी। पर पंडित जी अपनी धुन के पक्के थे। मिर्जा गुलाम अहमद की कोठी पर कादियान पहुँच गए। दो मास तक पंडित जी कादियान में रहे पर मिर्जा गुलाम अहमद कोई भी चमत्कार नहीं दिखा सका।

इस खीज से आर्यसमाज और पंडित लेखराम को अपना कट्टर दुश्मन मानकर मिर्जा ने आर्यसमाज के विरुद्ध दुष्प्रचार आरम्भ कर दिया।

मिर्जा ने ब्राहिने अहमदिया नामक पुस्तक चंदा मांग कर छपवाई। पंडित जी ने उसका उत्तर तकजीब ब्राहिने अहमदिया लिखकर दिया।

मिर्जा ने सुरमाये चश्मे आर्या (आर्यों की आंख का सुरमा) लिखा जिसका पंडित जी ने उत्तर नुस्खाये खब्ते अहमदिया (अहमदी खब्त का ईलाज) लिख कर दिया। मिर्जा ने सुरमाये चश्मे आर्या में यह भविष्यवाणी करी की एक वर्ष के भीतर पंडित जी कि मौत हो जाएगी। मिर्जा की यह भविष्यवाणी गलत निकली और पंडित जी इस घटना के ११ वर्ष बाद तक जीवित रहे।

पंडित जी की तपस्या से लाखों हिन्दू युवक मुसलमान होने से बच गए। उनका हिन्दू जाति पर सदा उपकार रहेगा।

पंडित जी का अमर बलिदान

मार्च १८९७ में एक व्यक्ति पंडित लेखराम के पास आया। उसका कहना था कि वह पहले हिन्दू था बाद में मुसलमान हो गया, अब फिर से शुद्ध होकर हिन्दू बनना चाहता है। वह पंडित जी के घर में ही रहने लगा और वही भोजन करने लगा। ६ मार्च १८९७ को पंडित जी घर में स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र पर कार्य कर रहे थे। तभी उन्होंने एक अंगड़ाई ली तभी उस दुष्ट ने पंडित जी के सीने में छूरे से वार कर दिया और भाग गया। पंडित जी को अस्पताल ले जाया गया जहाँ रात को दो बजे उन्होंने प्राण त्याग दिए। पंडित जी को अपने प्राणों की चिंता नहीं थी उन्हें चिंता थी तो वैदिक धर्म की। उनका आखिरी सन्देश भी यही था – **"तहरीर (लेखन) और तकरीर (शास्त्रार्थ) का काम बंद नहीं होना चाहिए"**। पंडित जी का जीवन आज के हिन्दू युवकों के लिए प्रेरणादायक है। ******************************

महाजनो येन गतः स पन्थाः।
महान व्यक्ति जिस पथ पर चलते हैं वही सही रास्ता है ।

क्या उपनिषद् वेदों के विरोधी हैं? (डॉ. अम्बेडकर भ्रमभंजन भाग–२)

पिछले अंक में डॉ. अम्बेडकर के उपनिषद् और वेदों के सम्बन्ध में भ्रांति का खंड़न किया गया था। इसी विषय पर आगे बढ़ते हैं। डॉ. अम्बेड़कर ने छान्दोग्य और बृहदारण्यकोपनिषद से दर्शाया कि वे वेदों का विरोध करते हैं –

छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार:

(1) "नारद सनत्कुमार के पास गये और कहा– "मुझे उपदेश करें"। नियमानुसार आये हुए नारद से सनत्कुमार ने कहा– तुम जो कुछ जानते हो उसे बतलाते हुए मेरे पास आओ, फिर मैं तुम्हें तुम्हारे ज्ञान से आगे उपदेश करूगा।" (2) ऐसा सुनकर

74 बाबा साहेब डा. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय

नारद ने कहा, "मैं ऋग्वेद पढ़ा हू। यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद भी जानता हूं। सिवाय इनके इतिहास, पुराण रूप पंचमवेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, कलानिधि शास्त्र; तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षाकल्प, छंद और ब्रह्मविद्या, भूतशास्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिषविद्या, गारुड़विद्या, नृत्य संगीतादि विद्या- यह सब मैं जानता हूं। (3) यह सब जानते हुए भी वह मैं केवल शब्दार्थ मात्र ही जानता हू, आत्मा को मैं नहीं जानता। मैंने आप पूज्यजनों के जैसे महापुरुषों से सुना है। आत्मज्ञानी शोक को पारकर जाता है। मैं तो शोक करता हूं। ऐसे शोकग्रस्त मुझे शोक से पारकर देवें, अर्थात् मुझे अभय प्राप्त करा देवें। ऐसा सुनकर सनत्कुमार ने नारद से कहा– "अभी तक यह जो कुछ तुम जानते हो, वह नाममात्र ही है"। (4) क्योंकि ऋग्वेद नाम है; यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्ववेद, पांचवा वेद इतिहास पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पात ज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेद विद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड़, संगीतादि कला और शिल्पशास्त्र – ये सब भी नाम ही हैं। अतः प्रतिमा में विष्णु बुद्धि के समान। तुम नाम की ब्रह्म बुद्धि से उपासना करो। (5) वह जो नाम ब्रह्म है, ऐसी उपासना करता है, जहां तक नाम की गति है, वहां तक नाम के विषय में उस उपासक की यथेष्ट गति हो जाती है। जो "यह ब्रह्म है" इस प्रकार नाम की उपासना करता है। (नारद ने कहा) भगवान् क्या नाम से बढ़कर भी कोई वस्तु है। सनत्कुमार ने कहा नाम से भी बढ़कर वस्तु है। (तब नारद ने कहा भगवन्, मुझे उसका ही उपदेश करें।"

बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार:

इस सुषुप्तावस्था में पिता अपिता हो जाता है, माता अमाता हो जाती है अर्थात् जन्य जनक भाव संबंध नहीं रह जाता। लोक अलोक हो जाते हैं। देव अदेव और वेद अवेद हो जाते हैं, अर्थात् सभी साध्य–साधन का अभाव हो जाता है। यहां पर चोर अचोर हो जाता है। भ्रूण हत्यारा अभ्रूण हो जाता है। चांडाल–चांडाल नहीं रह जाता है। पुल्कस अपौल्कस हो जाता है। शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न संतान को चाण्डाल कहते हैं। शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न संतान को निषाद कहते हैं एवं निषाद से क्षत्रिय में उत्पन्न संतान को पुल्कस कहते हैं। परिव्राजक अपरिव्राजक और वानप्रस्थी अतापस हो जाता है, अर्थात् किसी वर्णाश्रम धर्म की या पुण्य–पाप की प्रतीति नहीं होती। उस समय यह पुरुष पुण्य से असंबद्ध तथा पास से भी संबंध रहित हो जाता है। किंबहुना:– उस अवस्था में हृदयस्थ समस्त शोकों को पार कर जाता है।

वही पुस्तक, अध्याय 8,पृष्ठ 74

इसमें प्रथम अम्बेडकर साहब ने छान्दोग्योपनिषद् को रखा। यहाँ सातवां प्रपाठक पहला खंड का पहला श्लोक का अर्थ डॉ. अम्बेडकर ने दिया है। यहाँ भी समाधान पिछले अंक में किये गये परा और अपरा विद्या के सम्बन्ध में ही समझना चाहिये। नारद जी ने इन विद्याओं का शब्द मात्र पढ़ लिया था। किन्तु ब्रह्म प्राप्ति के साधनों का प्रयोग नहीं किया था, वही सीखने वे सनत्कुमार के पास आए थे। उनको नाम मात्र ज्ञान के साधन से ऊपर उठाकर आत्मवित् बनाने के लिए ही सनत्कुमार ने इस प्रपाठक में उन्हें शिक्षा दी है। अब देखिये छान्दोग्योपनिषद स्वयं वेदों को अमृत अर्थात् नित्य परम ज्ञान घोषित करता है –

वेदों को अमृत अर्थात् नित्य परम ज्ञान घोषित करता है

ऋग्वेद एव पुष्प ता अमृता (छां. 3/1/1)

यजुर्वेद एव पुष्प ता अमृता (छां.3/2/1)

सामवेद एव पुष्प ता अमृता (छां.3/3/1)

अर्थवाङिरस एव मधुकृत इतिहासपुराण पुष्प ता अमृता (छां. 3/4/1)

ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता (छां. 3/5/1)

वेदा ह्मृता(छां.3/1/4)

यहाँ चारों वेदों को अमृत कहा है। अर्थात् नष्ट न होने वाला ज्ञान। यहाँ ऊपर दिये अम्बेडकर जी के प्रमाण से उपनिषद् वेदों के विरोधी तो सिद्ध नहीं हुए किन्तु अब इन प्रमाणों से वेदों के समर्थक अवश्य ही सिद्ध हो गए हैं।

इससे आगे डॉ. साहब ने बृहदारण्यकोपनिषद् का प्रमाण दिया। यहाँ पता नहीं डॉ. साहब इतनी बड़ी भूल कैसे कर गए कि यहाँ अर्थ में (अध्याय 4, ब्राह्मण3 कण्डिका 22) उन्होंने स्वयं लिखा है कि सुषुप्तावस्था में, अर्थात् ये सारा वर्णन् पिता अपिता हो जाता है, माता अमाता हो जाती है, देव अदेव हो जाते हैं, वेद अवेद हो जाते हैं आदि। व्यक्ति की निद्रा और स्वप्नावस्था का प्रकरण है। ये सत्य भी है कि स्वप्न और सोने में व्यक्ति को अनेक चीजों का भान नहीं रहता है। यहाँ वेद को अवेद लिखने से तात्पर्य है कि निद्रा या स्वप्नावस्था में व्यक्ति को इनका बोध नहीं

रहता है। यहाँ पता नहीं कैसे डॉ. साहब ने इस सुषुप्तावस्था के विवरण से वेद विरुद्धता देख ली, ये आश्चर्य का विषय है। सम्भवतः ड़ॉ. साहब यहाँ जबरदस्ती उपनिषदों को वेदों के विरोध में अर्थात् दोनों को एक – दूसरे का प्रतिदन्द्वी बतलाने का प्रयास कर रहे थे, इसलिए उनके जो मन में आया वो उन्होंने विरोध में लिख दिया, भले ही उनमें एक भी वाक्य, विरोध को प्रदर्शित नहीं करता हो। बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4.10 स्वयं चारों वेदों को ईश्वर का श्वास रूप बताता है। –

''महतो भूतस्य निश्वसितमेतघदृग्वेदो यजुर्वेदः ... अथर्वाङ्गिरस...'' इस प्रमाण से सिद्ध है कि उपनिषद् वेदों को ईश्वर का ज्ञान मानते हैं, किन्तु ईश्वर की प्राप्ति वेदों को पढ़ने मात्र से नही बल्कि उनमें दिये गए ईश्वर के गुणों का चिंतन, मनन, ध्यान और वैराग्य भाव से उपासना को बतलाते हैं जो कि वेदों के ही सिद्धान्त की व्याख्या मात्र हैं।

इससे आगे डॉ. अम्बेडकर कठोपनिषद् का प्रमाण रखते हैं –

आठवीं पहेली 75

आत्मा उपदेश से प्राप्य नहीं। न ही ज्ञान से, न पठन से। वह उसी को प्राप्त होती है जिसे वह चाहे। आत्मा उसी शरीर में वास करती है जिसे वह चुन लेती है।

वही पुस्तक, पृष्ठ 75

यहाँ यह प्रमाण उन्होंने कठोपनिषद् द्वितीय वल्ली के सातवें श्लोक का रखा है। यहाँ लिखा है – श्रवणायापि.....कुशलानुशिष्ट अर्थात् बहुत से लागों को इस आत्मा के बारे में सुनने को नहीं मिलता है, बहुत से सुनकर भी नहीं जान पाते हैं, कोई विरला ही कुशल गुरु के उपदेश से इसे जानने में प्रवीण हो पाता है।

आगे भी लिखा है – **न नरेणावरेण....प्रमाणात्** अर्थात् साधारण मनुष्य के उपदेश और चिन्तन से भी ये आत्मा सुगमता से जानने योग्य नहीं है। यहाँ आत्मा को इन्द्रियों से परे बताकर, उसकी सूक्ष्मता का वर्णन किया गया है। आत्मा इन्द्रियों और उपदेश श्रवण और वेदादि पढ़ने मात्र से प्राप्त नहीं होती, ऐसा यहाँ बताया है। आत्मा प्राप्ति का साधन इसी अध्याय अर्थात् दूसरी वल्ली के तेरहवें श्लोक में निम्न प्रकार किया है –

''एतृच्छत्वा..स मोदते मोदनीय हि लब्ध्वा...''–कठो. 2.13 अर्थात् वह आत्मा ज्ञान के अध्ययन, श्रवण के पश्चात् मनन और मनन के पश्चात् ग्रहण अर्थात् उस ज्ञान को धारण करके तत्पश्चात् निदिध्यासन करके प्राप्त होता है। यहाँ कही भी वेद विरोधी बात नहीं कही गयी है, न ही वेदों का विरोध किया गया है।

अतः उपनिषदों को वेदों का विरोधी कहना अम्बेडकर जी की अज्ञानता मात्र ही कही जाएगी। आश्चर्य की बात है कि उन्होने ऐसी पुस्तक को लिखते समय केवल विदेशी व्याख्याएँ ही देखी, शांकरभाष्य आदि अन्य भारतीय विद्वानों की वृत्तियों को नहीं देखा, जो उनकी असजगता का प्रमाण है। इस विषय में आगे डॉ. अम्बेडकर द्वारा अन्य उपनिषदों के द्वारा वेदों पर लगाये आक्षेपों का खंडन करेंगे।******

क्रमशः ....

– वैदिक प्रहरी

संदर्भित ग्रंथ एवं पुस्तकें –

(1) हिन्दू धर्म की पहेलियाँ – डॉ. अम्बेडकर

(2) एकादशोपनिषद् – सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।

जो–जो विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं।

❖

ज्ञानवानेन सुखवान् ज्ञानवानेव जीवति।
ज्ञानवानेव बलवान् तस्मात् ज्ञानमयो भव।।

ज्ञानी व्यक्ति ही सुखी है, और ज्ञानी हीं सही अर्थों में जीता है, जो ज्ञानी है वही बलवान है, इसलिए तू ज्ञानी बन।

❖

राष्ट्र लिपि : देवनागरी

– डॉ. हरिसिंह पाल

भाषा जिस माध्यम से लिखी जाती है उसे लिपि कहते हैं। लिपि की उत्पत्ति 'लिप्यते' शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ है– 'लिखावट'। प्रत्येक अक्षर को अंकित करने के लिए कुछ चिह्न निर्धारित है। इन्हीं व्यवस्थित चिह्नों की श्रृंखला को लिपि कहा जाता है। "लिपि किसी भी भाषा की ध्वनि का ध्वन्यात्मक प्रतीक है। लिपि चाहे वर्णात्मक हो या चित्रात्मक। भाषा के संरक्षण और ज्ञान के प्रसार को स्थाई बनाने के तथा उसे आगे बढ़ाने एवं भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने हेतु 'लिपि का निर्माण किया गया।"1 विकास की दृष्टि से लिपियों का अनुक्रम रखा इस प्रकार रखा जा सकता है– चित्र लिपि, सूत्र लिपि, प्रतीकात्मक लिपि, भाव मूलक लिपि और ध्वनि मूलक लिपि। लिपि ध्वन्यात्मक भाषा को, दृश्य सांकेतिक चिह्नों में परिवर्तित करने की विधि है। जिस प्रकार भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है, उसी प्रकार लिपि भाषा का वाहक–रथ हैं, जिस पर सवार होकर भाषा पाठक तक पहुंच पाती है। लिपि एक प्रकार से दृश्य भाषा ही हैं। "लिपि का विकास लगभग ई.पू 10,000 से 4000 ई.पू के मध्य माना जाता है।"2

इतना निश्चित है कि ब्राह्मी के आरंभिक अक्षर बदलते–बदलते आज की देवनागरी के रूप में आ गए हैं। साथ ही देवनागरी ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप नए–नए वर्ण भी विकसित किए, जो ब्राह्मी में नहीं थे। उदाहरणार्थ– "ब्राह्मी में शून्य (0) का अंक नहीं था, जबकि सैकड़ा और हजार के लिए अलग–अलग लिपि चिह्न थे। **देवनागरी ने शून्य का विकास कर मानव सभ्यता को नई अंकीय विधि उपलब्ध कराई।** 'ड.' और 'ढ़' भी देवनागरी में ही है।"3 ब्राह्मी से ही श्रीलंका, तिब्बत, म्यांमार, जावा, सुमात्रा, बोर्नियों, लाओस कंबोडिया, थाईलैंड और मंगोलिया की लिपि भाषाएं विकसित हुई है। इस प्रकार इन देशों की लिपियां भी देवनागरी की सहगोत्री हैं।

देवनागरी लिपि विश्व की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपियों में से एक है। इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए निश्चित संकेत–चिह्न होने के कारण, जो कुछ लिखा जाता है वही बोला जाता है। इसमें अपनी ओर से कुछ भी जोड़ना नहीं पड़ता और न किसी ध्वन्यांश को छोड़ने की आवश्यकता ही होती है। इसके सभी वर्णों के उच्चारण का स्थान तथा उच्चारण में श्वांस गति और जिह्वा की स्थिति का बराबर ध्यान रखा गया हैं। लिप्यिंतरण की दृष्टि से यह लिपि किसी भी भाषा को सही रूप में अंकित कर सकती हैं।

नागरी की विशेषताओं को इस प्रकार भी देखा जा सकता है।

(1) देवनागरी वर्णमाला में वर्णों का क्रम अत्यंत व्यवस्थित है। इसमें पहले स्वर आते हैं, फिर व्यंजन।

(2) देवनागरी के स्वरों में भी हृस्व एवं दीर्घ क्रम रहता है। स्वरों के पांच वर्ग है।

(3) नागरी में चिह्नों के नाम उसमें, उसके उच्चारण के निकटतम है। यह उच्चारण की अनुवर्तिनी है, वर्तनी की नहीं।

(4) नागरी लिपि में एक ध्वनि के लिए, एक ही लिपि चिह्न हैं।

(5) नागरी लिपि का प्रत्येक वर्ण उच्चरित होता है, इसमें कोई मूक (Silent) वर्ण नहीं है।

(6) नागरी लिपि वर्णों की लिखावट कलात्मक, सुंदर और सुगठित है और इसमें अपेक्षाकृत कम लगती है। पढ़ने में सुगम और सहज है।

(7) यह वर्णात्मक लिपि है। इसके सभी वर्ण उच्चारण के अनुरूप है। लचीलापन इसकी अन्य विशेषता है। लिपि की वैज्ञानिकता अक्षरों से प्रकट होती है।

(8) उच्चारण के जितने भी उतार–चढ़ाव हो सकते हैं, जितने भी मृदु, कठोर और कठोरतम बलाघात हो सकते हैं, सभी का समावेश नागरी लिपि में किया गया है।

(9) नागरी की वर्णमाला के किसी भी वर्ण को अलग–अलग करके लिख सकते हैं।

(10) मुख के पृथक–पृथक स्थानों से उच्चारित होने वाले व्यंजन भी अलग–अलग वर्गों में संग्रहीत हैं। कंठ से बोले जाने वाले 'क' वर्ग में, तालु से बोले जाने वाले 'च' वर्ग में, मूर्घन्य 'ट' वर्ग में, दंत्य 'त' वर्ग में, और ओष्ठ 'प' वर्ग में अक्षर आते हैं।
(11) सभी व्यंजनों के अंत में 'अ' समाहित है। इसमें वर्ण संयोग की पद्धति पूर्णतया वैज्ञानिक हैं।
(12) वर्णों की आकृति में स्पष्टता है। इसकी वर्णमाला अधिक परिष्कृत और विकसित है।
(13) इस लिपि में संक्षिप्तता है, स्पेलिंग (वर्तनी) याद रखने की जरूरत नहीं होते, इसके उच्चारण की सरल प्रणाली है।
(14) नागरी लिपि में विश्व की सभी क्रमानुगत सभी भाषाओं की और नवागत ध्वनियों को उच्चारित एवं प्रतिनिधित्व करने वाले लिपि चिह्न विद्यमान हैं। इसमें ध्वयात्मक–मूल्य अधिक हैं, इस कारण नए ध्वनि–चिह्न अपना कर, इसने अंतरराष्ट्रीय लिपि (विश्व लिपि) की क्षमता कर ली है।

भारत की लगभग सभी प्राचीन और आधुनिक भाषाओं की लिपि नागरी है। इसकी संपन्नता, पूर्णता, व्यापकता, सरलता, सुंदरता आदि को ध्यान में रखकर देश के विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों ने नागरी लिपि को राष्ट्रीय लिपि बनाने की एकमत से इच्छा व्यक्त की। शुद्ध उच्चारण, शुद्ध लेखन एवं निश्चित बोध गम्यता एवं अभिव्यक्ति की प्रभावशीलता को सुनिश्चित करने के लिए हमारे मनीषियों ने सदियों पूर्व प्रत्येक वर्ण के उच्चारण को इतनी अच्छी तरह से बता दिया था कि यही तथ्य हमारी नागरी लिपि की एक गौरवपूर्ण धरोधर बन गई। ''देवनागरी, रोमन लिपि की भांति विदेशी लिपि नहीं है, अपितु पूर्णतः भारतीय है। इसकी उत्पति और विकास भारत भूमि में हुआ है। इस प्रकार इसकी जड़ें देश के इतिहास और संस्कृति में हैं।''4 भारत में जितनी लिपियां प्रचलित हैं, उनमें नागरी लिपि को जानने वालों की संख्या सर्वाधिक है।

नागरी की प्रतिष्ठा

भारत में भले ही शासन व्यवस्था भारतीयों के हाथ रही हो या आक्रमणकारी विदेशियों के हाथ में, सभी ने अपनी शासन व्यव्स्था में देवनागरी के महत्व को आदर और सम्मान के साथ स्वीकार किया। बाद में भले ही शासन की राजभाषा फारसी या अंग्रेजी रही हो, किंतु इस काल खंड में भी देवनागरी अपना अस्तित्व बचाए रखने में सफल रही। ''ईसा से 23 वर्ष पूर्व एक राजकीय दान के ताम्रपत्र में उत्कीर्ण नागरी में लिखा संस्कृत अभिलेख मिला हैं। ग्यारहवीं सदी में नागरी में लिखे अनेक शिलालेख, मूर्ति अभिलेख और ताम्रपत्र मिले। मध्यकाल के प्रारंभ से लेकर (1200 ई.) मुगल शासन (1556–1605 ई.) तक राजस्व विभाग में नागरी लिपि का निर्विवाद प्रचलन था।''5 मुगल बादशाह अकबर से लेकर औरंगजेब तक के शासन काल में सिक्कों पर और शाही फरमानों में नागरी लिखने की परंपरा थी। दक्षिण भारत के विजयनगर साम्राज्य (1336–1564 ई) के सिक्कों पर देवनागरी और सभी राजकीय कार्यों में नागरी लिपि का प्रयोग होता था। इसी प्रकार चोल राजाओं (ग्यारहवीं सदी) और केरल के शासकों के सिक्कों पर भी नागरी लिपि अंकित थी। सुदूर दक्षिण से प्राप्त वरगुण का 'पलियम ताम्रपत्र' नागरी लिपि में मिला है। इतना ही नहीं श्रीलंका के पराक्रमबाहु और विजयबाहु आदि शासकों के सिक्कों पर भी नागरी अक्षर मिले हैं। उत्तर भारत में मेवाड़ के गुहिल, अजमेर के चौहान, कन्नौज के गाहड़वाल, कठियावाड़ (गुजरात) के सोलंकी, आबू के परमार, बुंदेलखंड के चंदेल और त्रिपुरी के कलुचरी आदि शासकों के अभिलेख भी नागरी में ही थे। अलबरूनी ने अपने ग्रंथ (1030 ई.) में लिखा था कि मालवा में नागरी लिपि का प्रयोग होता है। इससे स्पष्ट है कि आठवीं से लेकर ग्यारहवीं सदी तक नागरी लिपि पूरे देश में प्रचलन में थी। उस समय यह सार्वदेशिक लिपि थी। हिंदी के सैकड़ों वर्षों का समृद्ध साहित्य नागरी की शक्ति का ही परिचायक है।

''ईस्ट इंडिया कंपनी शासन काल के प्रारंभ में ही एशियाटिक सोसाइटी कलकता के संस्थापक अध्यक्ष सर विलियम जोंस ने अपने शोध पत्र (17 अप्रेल 1724 ई.) में नागरी लिपि को अन्य लिपियों की अपेक्षा सर्वाधिक श्रेष्ठ लिपि घोषित किया। इसे नागरी लिपि आंदोलन का शुभारंभ माना जा सकता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रथम संविधान (1मई 1793 ई.) के प्रथम अनुच्छेद की तृतीय धारा में नागरी लिपि को सरकारी स्वीकृति मिली।''6 फ्रेडरिक जॉन शौर ने अपने न्यायधीश की सेवा (1832–1834 ई.) के दौरान

निर्णय दिया था कि **देवनागरी भारत की लिपि है, फारसी नहीं।** सन् 1837 में सरकार ने निश्चय किया कि न्याय और राजस्व विषयक सभी कार्य फारसी के विपरीत, यहाँ की देश भाषा में हों। बाद में 30 सितम्बर 1854 को सरकारी आदेश आया कि गांवों के पटवारियों के कागजात हिंदी भाषा और नागरी लिपि में लिखे जायं। डॉ. राजेन्द्र लाल मित्रा ने 1864 में 'जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी' में यह विचार व्यक्त किया कि देवनागरी लिपि को हिंदवी और उर्दू भाषाओं की लिपि के रूप में स्वीकार किया जाए। सन् 1866 में एफ.एस. ग्राउस ने नागरी लिपि को शासकीय स्वीकृति दिलाने की दिशा में मजबूत कदम उठाए। सन् 1868 में राजा शिव प्रसाद 'सितारेहिंद' ने जनसाधारण की शिक्षा के लिए नागरी लिपि को सशक्त समर्थन दिया और हिंदी और नागरी लिपि के कटट्र समर्थक के रूप में अपनी पहचान बना ली। वे पहले भारतीय साहित्यकार थे, जिन्होंने नागरी लिपि के समर्थन में ब्रिटिश सरकार को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। सन् 1873 में पश्चिमोत्तर प्रदेशवासियों ने भी इसी प्रकार का ज्ञापन सरकार को दिया। 6 जून 1881 ई को मध्यप्रदेश की कचहरियों में नागरी लिपि को सरकारी मान्यता मिल गई। जबकि उस समय विभिन्न देशी रजवाड़ों में शासन प्रशासन की लिपि फारसी थी। इंदौर के मल्हार राव होलकर (1693–1766) तत्पश्चात लोकमाता देवी आंहिल्याबाई होलकर (1725–1795) नागरी को राजकार्य की लिपि बनाया। अयोध्या राज्य ने सन्1903, में कोटा 1907, में अलवर ने 1909 में छत्तरपुर में 1910 में अपने राज्य में शासन की लिपि नागरी स्वीकार की। 1854 में भारत के अंतिम मुगल बादशाह जफर के भतीजे वेदार बख्त ने स्वाधीनता संग्राम की सूचनाओं प्रसारित करने के लिए 'पयामे आजादी' अखबार निकाला जो फारसी और नागरी दोनों लिपि में था।

प्रख्यात देश भक्त और बांग्ला भाषी आधुनिक युग के हमारे अग्रणी नेताओं, प्रबुद्ध विचारकों और मनीषियों ने राष्ट्रीय एकता के लिए नागरी लिपि के प्रयोग पर बल दिया था। राजाराममोहन राय, बंकिमचन्द चटर्जी, महर्षि दयानंद, लोकमान्य बाल, गंगाधर तिलक, केशववामन पेठे, कृष्णस्वामी अय्यर, मुहम्मद करीम छागला आदि मनीषियों ने राष्ट्रीय एकता के लिए 'नागरी लिपि की महत्ता को स्वीकार किया था। लोकमान्य तिलक ने 1905 में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी में कहा था–' देवनागरी को समस्त भारतीय भाषाओं के लिए स्वीकार किया जाना चाहिए। 'दक्षिण भारतीय विद्वान वी. कृष्णास्वामी अय्यर ने 1910 में इलाहाबाद में कहा था–'देश की एकता के लिए देवनागरी लिपि को स्वीकार किया जाना चाहिए।''7

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने 1857 में संस्कृत के लिए सभी विश्वविद्यालयों में देवनागरी को स्वीकृत कराया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 1909 में अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में हिंदी की अनिवार्यता और इसे नागरी और फारसी में लिखने का आग्रह किया। वर्ष 1916 के कांग्रेस की लखनऊ अधिवेशन में गांधी जी के सभापतित्व में, 'एक लिपि परिषद्' के कार्यक्रम में, नागरी लिपि और हिंदी भाषा सार्वदेशिक रूप में प्रचार हेतु स्वीकार किया। वर्ष 1918 के इंदौर अधिवेशन (आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन) में अपने अध्यक्षीय भाषण में गांधी जी ने हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का स्थान दिया था। जुलाई 1927 में गांधी जी ने कहा था– 'भारत की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि होना लाभदायक है और वह लिपि नागरी ही हो सकती है। भारत की सभी भाषाओं के लिए नागरी लिपि ही चलनी चाहिए।''8

नागरी की प्रतिष्ठा

नागरी लिपि के प्रचार–प्रसार का कार्य सिर्फ हिंदी भाषा–भाषी क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा। भारतीय समाज के तत्कालीन उन्नायकों को यह समझ आ गया था कि यदि पूरे देश को एक सूत्र में निबद्ध होना है तो अन्यान्य तत्वों के साथ–साथ उसकी भाषा भी एक होनी चाहिए। यदि भाषा एक न हो सके तो विभिन्न भारतीय भाषाओं की लिपि तो एक होनी ही चाहिए। तत्कालीन बंगाल के जस्टिस शारदा चरण मित्र ने 1905 में कोलकता में 'एक लिपि विस्तार परिषद' की स्थापना की। इसके सदस्यों में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, सर गुरूदास बनर्जी (कुलपति) महाराजा रामेश्वर सिंह (दरभंगा) महाराज प्रतापनारायण सिंह (अयोध्या), महाराजा रावणेश्वरप्रसाद सिंह (मुंगेर) श्रीधर पाठक, बालकृष्ण भट्ट, रामानंद चटर्जी (संपादक– प्रवासी, इलाहाबाद)

प्रमुख थे। साथ ही इन्होंने 1907 में कोलकाता से 'देवनागर' नाम से पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया गया। इसके प्रवेशांक में ही यह उल्लिखित था– ''इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है–भारत में एक लिपि का प्रचार बढ़ाना और वह एक देवनागराक्षर हैं। भारतीय लिपियों की जननी देवनागरी लिपि ही हैं, जैसे भाषाओं की जननी संस्कृत। देवनागर का व्यवहार चलाने में किसी प्रांत का अपनी लिपि या भाषा के साथ स्नेह कम नहीं पड़ सकता। हाँ, यह अवश्य है कि अपने परिमिति मंडल को बढ़ाना होता।''9 'देवनागर' के विभिन्न अंकों में बंगला, मराठी, पंजाबी, कन्नड, तमिल, गुजराती, नेपाली, ओड़िया, मलयालम आदि प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की साहित्यिक सामग्री, देवनागरी में लिप्यंतरित करके छापी जाती थी। यह पत्रिका जस्टिस मित्र के जीवनपर्यन्त (1917) तक प्रकाशित होती रही।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' (1823–1895) पहले हिंदी साहित्यकार थे, जिन्होंने साहित्यिक क्षितिज पर भारतेन्दु हरिश्चंद्र के अभ्युदय से बहुत पहले सरकारी स्तर पर देवनागरी लिपि के प्रचलन हेतु अभ्यावेदन तत्कालीन सरकार को दिया था। सितारे हिंद ने जनवरी 1868 ई. में पश्चिमोत्तर प्रदेश के शिक्षा निरीक्षक की हैसियत से यह अभ्यर्थना पत्र दिया था।

नागरी लिपि को प्रथम प्रचारक के रूप में लुधियाना में जन्मे पं. गौरीदत्त (1836–1906) मिले। जिन्होंने दयानंद महर्षि सरस्वती से प्रेरणा लेकर मेरठ के वैदवाडा मौहल्ले में 'देवनागरी पाठशाला' की स्थापना 1870 की, कुछ दिन बाद आपने 1894 में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की भी स्थापना की। ये नागरी सेवा से काफी सक्रिय रूप से जुडे थे। पं. गौरीदत्त ने देवनागरी के प्रचार–प्रसार के लिए जहाँ स्थान–स्थान पर अनेक नागरी पाठशालाएं स्थापित की, वहीं अपनी लेखनी से 'नागरी सौ, अक्षरः' दीपिका;' 'नागरी की गुप्त वार्ता;' 'लिपि बोधिनी;' 'देवनागरी के भजन' औरः 'गौरी नागरी' आदि अनेक पुस्तकों के साथ–साथ की रचना करने के अतिरिक्त 'देवनागर', 'देवनागरी प्रचारक;' 'देवनागरी गजट' तथा 'नागरी पत्रिका' का भी संपादन और प्रकाशन भी किया था। इन्होंने अपनी मृत्यु से पूर्व 1 जून 1903 को अपनी वसीयत में अपनी समस्त चल और अचल सम्पति नागरी के प्रचार–प्रसारके लिए अर्पित कर दी थी।''10

इसी श्रेणी में देवनागरी लिपि के समर्थनकर्ता– ओंमेंलालखडग बहादुर मल्ल (देवरियां), राधालाल माथुर (नागरी लिपि का सर्वप्रथम 'शब्दकोश', बनारस) काशीनाथ खत्री (इलाहाबाद), रामकृष्ण वर्मा (संपादक – भारत जीवन), केशव वामनपेठे, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, सतीशचन्द्र विद्याभूषण, बालमुकंद गुप्त, पं. मांधोराम (पंजाब), भीमसेन विद्यालंकार (हैदराबाद),महापंडित राहुल सांकृत्यायन और विनायक दामोदर सावरकर आदि का नाम प्रारंभिक नागरी प्रचारकों में शामिल है।

संविधान में नागरी हिंदी

स्वाधीनता के बाद गठित संविधान समिति ने फरवरी 1948 को जो प्रारूप प्रस्तुत किया, उसमें राजभाषा का कोई उल्लेख नहीं था। परन्तु क.मा. मुंशी (गुजरात) के अथक प्रयासों से सितंबर 1949 में संविधान सभा में राजभाषा पर चर्चा हुई। इसमें नागरी लिपि की महत्ता को सभी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार किया। इसीलिए भारत की संविधान सभा ने देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी को राष्ट्रभाषा नियत करने का प्रस्ताव तमिलभाषी गोपाल स्वामी आयंगर ने रखा, जिसे तेलुगुभाषी दुर्गाबाई, कन्नडभाषी कृष्णमूर्ति, मराठीभाषी शंकरराव देव, उर्दूभाषी मौलाना अबुल कलाम आजाद ने समर्थन दिया था। फलस्वरूप 14 सितंबर 1949 को संविधान के भाग–17 के अनुच्छेद 343(1) में राजभाषा के रूप में देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी को स्वीकार किया गया, जो 26 जनवरी 1950 से लागू हुआ। हमारे विद्वान राजनेताओं को यह विश्वास था कि देवनागरी राष्ट्रीय एकता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। आचार्य विनोबा भावे ने नागरी कि महत्व को स्वीकार करते हुए कहा था– 'हिन्दंस्तान की एकता के लिए हिंदी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी देगी। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि सभी भाषाएं देवनागरी में भी लिखी जाएं। सभी लिपियां चलें। साथ–साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाए।''11

नागरी लिपि परिषद् स्वतंत्र भारत में भी अनेकानेक नागरी प्रेमी विद्वानों और संस्थाओं ने नागरी लिपि के

प्रचार–प्रसार और संरक्षण–संवर्द्धन में अप्रतिम योगदान दिया है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के परमअनुयायी और भूदान आंदोलन के प्रणेता आचार्य विनोबा भावे की सत्प्रेरणा से गांधी स्मारक निधि, राजघाट नई दिल्ली ने 23–24 फरवरी 1974 में वर्धा में पवनार आश्रम में पहली बार 'नागरी संगोष्ठी' आयोजित की, जिसमें भारत और नेपाल के विद्वानों और भाषाविदों ने भाग लिया और इसमें लिए गए निर्णय के तरन्दर **17 अगस्त 1975 को 'नागरी लिपि परिषद' की स्थापना की गई।** इसमें भारत के संपूर्ण क्षेत्रों, दक्षिण भारत और पूर्वोत्तर राज्यों के प्रतिनिधियों ने, नागरी लिपि को अतिरिक्त लिपि के रूप में मान्यता दिलाने का संकल्प लिया। इनमें श्रीयुत श्रीमन्नारायण केन्द्रीय मंत्री प्रो. शेरसिंह, बंसत साठे, डी.पी. यादव, सांसद शंकरदयाल सिंह, दक्षिण भारतीय जी. शंकर कुरूप, प्रो. नागप्पा, डॉ. मलिक मौहम्मद, सी.ए. मेनन सहित डॉ. निर्मला देशपांडे, तारा भट्टाचार्य, रामनिवास मिर्धा, आर.आर.दिवाकर, क्रांतिभाई शाह, महेन्द्र मोहन चौधरी सिद्धेश्वर प्रसाद, जैनेन्द्र कुमार, आचार्य काका कालेलकर, नेपाल के राजदूत प्रो. मानघरे, डॉ. कर्ण सिंह, बालकवि बैरागी, डॉ. लोकशचन्द्र, प्रो. देवेन्द्र कुमार, नंदकुमार अवस्थी, भवानी प्रसाद मिश्र, यशपाल जैन, प्रो.गोपीचंद नारंग, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. प्रभाकर माचवे, श्री सरदार अली जाफरी, आचार्य क्षेमचंद सुमन, डॉ. भीमसेन निर्मल, डॉ. आई. पाडुरंग राव, कनिका चौधरी (पं. बंगाल) आदि विद्वान साहित्यकार और भाषाविद् प्रमुख थे।''12 बाद में डॉ. बालशौरि रेड्डी (चेन्नई), चैन्नम्मा हिल्लकरी (कर्नाटक), अक्षय कुमार महान्ति (ओड़िशा), सूर्यवंशी चौधरी (असम), डॉ. जोरम आनिया ताना (अरूणाचल प्रदेश), प्रो. सी.ई.जीनी, डॉ. वी.आर राल्ते, डॉ. लुईस हाउन्हार (मिजोरम), डॉ. पी.टी. जमीर (नागालैंड), आचार्य राधागोविंद थोंड.ाम, के.एच. सदाशिव सिंह (मणिपुर), सी.वी.चारी (आन्ध्र प्रदेश), डॉ. हरमेन्द्रसिंह बेदी (पंजाब) और दिल्ली से प्रो. गंगाप्रसाद विमल, डॉ. परमानंद पांचाल, डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी, बी.आर.कामराह, हरिबाबू कंसल, डॉ. शहाबुद्द्वीन शेख आदि नागरी सेवियों ने जुड़कर इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में अपना अप्रतिम योगदान दिया है।

आचार्य डॉ. रधुवीर का नामोल्लेख किए बिना नागरी लिपि के व्यापक अनुसंधान का अध्ययन पूरा नहीं हो सकता। आचार्य ने चीन, जापान, कंबोडिया, और सोवियंत संघ, मंगोलिया आदि पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों की शोध यात्रा कर, इन देशों में नागरी लिपि की उपस्थिति को भारत के समक्ष प्रस्तुत किया।

नागरी लिपि के प्रचार–प्रसार के लिए परिषद ने 1977 से 'नागरी संगम' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसके संपादन मंडल में सर्वश्री यशपाल जैन, भवानीप्रसाद मिश्र, डॉ. जैनेन्द्र कुमार, प्रो. गोपीचंद नारंग, डॉ. आई. पांडुरंग राव, प्रो. भीमसेन निर्मल, डॉ. डी.पी. पटनायक, निर्मला देशपांडे, बी.एन.फिलिप (केरल), प्रो. गंगा प्रसाद विमल, डॉ. लोकेशचन्द्र, डॉ. एच. बालसुब्रहमण्यम, डॉ. चन्द्रदत पालीवाल, सी.ए. मेनन, डॉ. विश्वनाथ टंडन, रक्माजी राव 'अमर', डॉ. मालिक मौहम्मद, डॉ. परमानंद पांचाल, डॉ. आनन्द स्वरूप पाठक, डॉ. जयन्ती प्रसाद मिश्र जैसे प्रख्यात साहित्यकार और भाषाविद जुड़े रहे।

नागरी लिपि परिषद विश्व की एकमात्र संस्था है, जो नागरी लिपि के प्रचार–प्रसार की मशाल थामे हुए है और 'नागरी संगम' एकमात्र पत्रिका है जो नागरी लिपि के संबंध में शोधपरक लेख प्रकाशित करती है।

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में नागरी

सूचना प्रौदयोगिकी के युग में अब नागरी–हिंदी कम्प्यूटर, इंटरनेट और मोबाइल के माध्यम से व्हाटसएप, बलॉगिंग, एस.एम.एस, ई–मेल, टिवटर, वेबसाइट, फेसबुक, माइक्रो–ब्लागिंग साइट जैसे सोशल मीडिया पर भी अपना वर्चस्व बना रही हैं। नागरी–हिंदी को दुनिया भर में तेजी से फैलाने में सूचना प्रौद्योगिकी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इंटरनेट पर हिंदी के अखबार, पत्रिकाएं, वेबसाइट और ब्लॉग्स देखे जा सकते है। ''अब गूगल के अनुसार 20% भारतीय उपभोक्ता हिंदी में नेट सर्फिंग करते है, केंद्र और राज्यों की 9 हजार वेबसाइट हिंदी में उपलब्ध 70 ई–पत्रिकाएं देवनागरी लिपि में इंटरनेट पर, हिंदी साहित्य से संबंधित उपलब्ध है। अंग्रेजी के 19% के मुकाबले 94% की दर से विकसित हो रही है। एक लाख से ऊपर नेट पर नागरी हिंदी ब्लॉगर संख्या है। महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी

विश्वविद्यालय, वर्धा की वेवसाइट डब्लू.डब्लू.डब्लू. हिंदी कॉम पर 1000 हिंदी के रचनाकारों की रचनाओं का अध्ययन किया जा सकता है/ नागरी–हिंदी के 15 से अधिक सर्च इंजन हैं, जो किसी भी वेबसाइट का नागरी–हिंदी अनुवाद करके पाठकों को उपलब्ध करा देते हैं। याहू, गूगल और फेसबुक भी हिंदी में उपलब्ध है। गूगल पर एक लाख विकीपीडिया के लेख है।''13 आज पूंजी बाजार नियामक सेबी सहित अनेक बैंकों और इसरों की वेबसाइट नागरी–हिंदी में उपलब्ध हैं। स्मार्ट फोन पर अब ट्रांसलेशन एप हैं, जो अंग्रेजी को नागरी–हिंदी या किसी भी भारतीय भाषा में या इन्हें अंग्रेजी में अनुदित कर सकते हैं। कई फोन में अब डिफाल्ट देवनागरी लिपि की बोर्ड उपलब्ध है। गूगल पर मेप और सर्च भी हिंदी में है। अब स्मार्ट फोन में चाहे हाथ से हिंदी नागरी में लिखकर मैसेज कर सकते है या फिर हिंदी की– बोर्ड को, डाउनलोड कर मैसेज टाइप कर सकते है। ''टिवटर को टक्कर देने के लिए अनुराग में हिंदी सोशल नेटवर्किंग साइट 'मूषक' बनाई है। जिसमें 500 शब्दों को पोस्ट लिख सकते है, जबकि टिवटर पर सिर्फ 140 की ही शब्द सीमा है। एक नंबर पर सिर्फ एक ही अकांउट ओपन हो सकता है। इसमें नागरी–हिंदी में अनुवाद की जगह लिप्यंतरण कर सकते है। इस पर फेसबुक से तीन गुना बेहतर फोटो वीडियो और पोस्ट अपलोड कर सकते है। अपनी पोस्ट को बुक मार्क कर सकते है साथ ही उसे ड्राफ्ट में सेव कर सकते है।''14 अलवर के सरकारी शिक्षक इमरान ने अपने छात्रों के लिए 50 से ज्यादा मुक्त एंड्राएड एप बनाए है। ललित कुमार ने 'कविता कोश' और 'गद्**य** कोश' की वेबसाइटे बनाई हैं/ दिल्ली की अपराजिता ने हिंदी के चेट–स्टीकर्स 'हिमोजी' नाम से बनाए है। मुंबई के अमितेश ने 'शब्द नगरी' नाम से सोशल नेटवार्किंग साइट बनाई है। केंद्र सरकार और कई राज्यों ने ई–गवर्नेंस हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं में बनाई है। ऑल इंडिया सोसाइटी फॉर इलैक्ट्रानिक्स एडं कंप्यूटर टैक्नोलॉजी ने हिंदी भाषा में कंप्यूटर की पुस्तकें बनाई है। आज नागरी–हिंदी तकनीक के साथ कदम मिलाकर चल रही है। आज कंप्यूटर व स्मार्ट फोन पर हिंदी में बोले गए शब्दों को लिखने की सुविधा उपलब्ध है और हाथों की लिखावट पहचानने वाला भी एप उपलब्ध है। नेट पर ऐसे कई विकल्प भी उपलब्ध हैं, जहां रोमन लिपि की सामग्री को नागरी लिपि या अन्य भारतीय भाषाओं की लिपि में बदल सकते हैं। देवनागरी लिपि निर्दोष, सर्वगुण–सम्पन्न और भारत की राष्ट्रलिपि होने की समस्त योग्यताएं रखती हैं।

****

संदर्भ:

1. डॉ. हीरालाल बाछोतिया; राजभाषा हिंदी और उसका विकास; आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, 2006 पृष्ठ 95
2. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, 'नागरी संगम', जनवरी–मार्च, 1985, पृष्ठ 16
3. डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया, अंग्रेजी हटाओं आंदोलन स्मारिका, साहित्य मंडल, नाथद्वारा 2000,पृष्ठ 214
4. डॉ. शंकर दयालसिंह राजभाषा भारती, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली
5. डॉ. रामनिरजंन परिमंलेन्दु; देवनागरी लिपि का इतिहास, साहित्य आकादमी, नई दिल्ली, 2017
6. ——————————वहीं——————————
7. डॉ. परमानंद पांचाल, हिंदी भाषाः प्रासंगिकता और व्यापकता, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2016,
8. प्रभु चौधरी, हिंदी जनभाषा से विश्व भाषा, उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद, 2017, पृष्ठ 61
9. डॉ. जगदीश शरण, प्रतियोगिता दर्पण, फरवरी 2015, पृष्ठ 103
10. आचार्य क्षेमचन्द सुमन 'नागरी संगम', (नागरी लिपि परिषद) जनवरी–मार्च 2014, पृष्ठ 6
11. 'नागरी संगम' (विनोबा जन्माशताब्दी विशेषांक) पृष्ठ 46
12. डॉ. हरिसिंह पाल, 'नागरी संगम' (मिजोरम स्मारिका) नवंबर 2017, पृष्ठ 12
13. हिन्दुस्तान, 07 फरवरी 2018, पृष्ठ 8
14. ————वहीं———— 12 सितंबर 2017, पृष्ठ 14

होली के प्राकृतिक और सामाजिक रंगों की उत्सवधर्मिता

– अखिलेश आर्येन्दु

होली के जितने भी रंग हैं सबके अपने खास मायने, भाव–दृष्टि, रंग और संदर्भ हैं। इन संदर्भों से जुड़ी होती है हमारी अंतस की वह चेतना जो होली को एक त्यौहार के रूप में नहीं बल्कि उत्सव और जीवनदर्शन के रूप में ग्रहण कर स्वयं को प्रेम की विह्वलता के शुभ संकल्प से सराबोर कर जाती है। इस तरह देखें तो होली हमारी अंतस–चेतना का एक ऐसा निश्छल और स्वच्छ जीवन–पर्व है जो हमें स्वयं में डूबने और प्रेम तथा सच को सबके सम्मुख स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है। जो ऊर्जा, शक्ति, सत्साहस, नेह और पवित्रता इस पर्व से हम प्राप्त करते हैं, उसे यदि वर्षभर बढ़ाते जाएं तो हमारा सारा जीवन भी वैसा ही उमंग और तरंग के रंग में डूबा उत्सव बन जाएगा जैसे होली का उत्सव। और मैं तो कविता के रूप में यही कहूंगा–खोल दो बंधन निलय का/ देख लो पर्दा उठाकर/ अपने हृदय के उस विजन में/ जो चाहता है प्रेम के सच्चे रंग में रंगना।

हम यदि होली के विभिन्न संदर्भों की बात करें तो पाते हैं कि न जाने कितने संदर्भ, घटनाएं, प्रसंग, परंपराएं और सांस्कृतिक–तत्त्व किसी न किसी रूप में इस प्रेम और सदभावना के महापर्व से जुड़े हुए हैं। लेकिन सबसे बड़ा प्रतीक इस पर्व का प्रेम का वह छलकता अमृत–कलश है जिसमें हमारा अंतर–जगत् ऐसे डूब जाता है कि हमें बाहर की अपनी सुधबुध का ही कोई पता नहीं रह जाता है। रंग, अबीर और पिचकारी को यूं ंतो शरीर, मन और आत्मा की उपमा करने वाले भी इसे एक ओर जहां आध्यात्मिक–पर्व के रूप में देखते हैं वहीं पर सहिष्णुता, शुभता, सदभावना, प्रेम, सत्य और भाईचारे के कारण इसे मूल्यों और धर्म का एक सबसे अनोखा पर्व मानने वालों की भी कमी नहीं है। इसी तरह एकता, मैत्री, समर्पण, श्रद्धा और रंगों की परंपरा के साथ महान् सांस्कृतिक और सामाजिक पर्व के रूप में देखने वाले इसे सारी मानव जाति का मैत्री और एकता के महान् सूत्र में बाधने वाले प्रिय पर्व को लाखों वर्षों से मनाते आ रहे हैं। एक उमंग, जीवन की तरंग और एक ही धारा–प्रेम की जिसमें स्नान करने के बाद वर्षों–वर्षों की कलुषित भावनाएं और संकीर्णताएं गायब हो जाती हैं। जिस स्वरूप को हम इसमें अंतर्मन से देखते हैं तब यह एक शुद्ध नवप्रभात का नवल विहान जैसा लगता है। और उस समय अंतर तन में बसी हुई कलुषित भावनाएं और विचार वैसे ही गायब हो जाते हैं, जैसे भगवान भास्कर के उदय होने पर अंधेरे का कोई पता नहीं होता।

होली ऋतु परिवर्तन, वातावरण परिवर्तन, उल्लास–पर्व और नये वर्ष के पुनीत आगमन का ऐसा उन्मुक्त संस्कार–उत्सव है जिसमें सब कुछ नूतन बदलाव का नवल विहान दिखाई पडता है। यज्ञ–हवन से सुगंधित दिशाएं, चारों तरफ मादकता और नवीनता का उद्वेग –जिसमें नर–नारी, बाल–बृद्ध और नये तरुण–तरुणियों का हास–परिहास का एक नया ही रूप देखने को मिलता है। अवध और भोजपुर के लोकजीवन में यह जहां फगुआ बनकर लोगों में मस्ती भर देता है वहीं पर नई फसल में पककर तैयार हुये जौ ,गेहूं और अन्य फसलों की बालियां प्रकृति के जीवन की गदराई छटा में झूमती हुई होलिका दहन के साथ नये स्वाद और सुगंध को जीवन में अमित सुरभि बिखरते हुए मन और तन को मदकता और मस्ती से सराबोर कर देते हैं। अमराई की सुगंधि में भ्रमरों के साथ चिड़ियों और कोयल की मधुर कूक कानों में घुलकर ऋतुराज वसंत और होली की पूर्णता (पूर्णिमा के साथ पूर्ण होता हुआ) का जहां एहसास दिलाते हैं वहीं पर वैदिक परंपरा में फाल्गुन पूर्णिमा के दिन यह वर्ष की पूर्णता का एक नया रंग भी बिखेरता दिखाई पडता है। और नवसंस्येष्टि के प्रारंभ का हममें नवीनता का बोध कराता जीवनधर्मी यज्ञ के लिए प्रेरित करता है। वसंत के यौवन का यह उल्लास–उत्सव जहां किसानों का नई फसल का उल्लास पर्व और उत्सव के रूप में इसकी प्रतिष्ठा है वहीं पर यह मैत्री, सदभावना और आपसी जीवनधर्मिता को प्रेम के रस में रंगकर दृढ़ता और परिपक्वता प्रदान करने वाला ऐसा त्योहार भी है तो हमें तृष्णा से तृप्तता की ओर ले जाता है। यहीं से नफरत से प्यार की तरंग का नया विहान उदय होता है। जीवनोत्सव का ऐसा परम पावन त्यौहार भारतीय मनीषा का सबसे मौलिक और अनोखा रंग है जिसे हम न जाने कितने रंगों में मचलते हुए देखते हैं। इसलिए बदरंगी छटा –जिसमें कीचड़, पेंट और अन्य बिद्रूपताओं के कृत्यों की इसमें कहीं जगह नहीं है।

नई फसल, फल, मेवों और रसों की नूतन ऊर्जा से भरा मानव समाज होली के पुरातन, वैज्ञानिक, शुद्ध आध्यात्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक चेतना और महानता को समझकर

यदि इस पर्व को सही मायने में उल्लास और आनंद की धारा में मनायें तो इसके गिरते स्वरूप को हम रोंक लेंगे। विकृति किसी भी पर्व के लिए स्वीकार नहीं है। न तो आहार–विहार के साथ, न व्यवहार–विश्वास के साथ और न तो जीवनधर्म और सृजन के साथ ही। हम होली या अवधी–भोजपुरी के फगुआ को इसके फागुनी और होलिकत्व के गहनतम और अति सरलतम स्वरूप के साथ यदि अपने जीवन–साहित्य के नवसृजन के साथ जोड़कर इसे मैत्री,एकता और सदभावना के साथ जीवन की विविधता और उमंग के उत्सव के रूप देंखे तो होली का स्वरूप हमें अपने सात्विक जीवन के परिमार्जन और पारिवारिक और सामाजिक जीवन के नव विहान–पर्व के साथ सांस्कृतिक चेतना के गहनतम विश्वास और प्रेम की उमंग का नया संदर्भ ही दिखाई पड़ेगा। जहां न तो कहीं बदले की भावना का कोई स्थान होगा, न तो शराब और भांग तथा जुआ–सट्टे का कोई जगह होगी और न हीं किसी को परेशान करके उसे दुख पहुंचाने की कोई बात ही होगी। रंग–अबीर–गुलाल हो या प्राकृतिक सेमल और अन्य रंगों की प्राकृतिक उमंग ही, सभी हमारे लिए स्वीकार बनते दीख पड़ेंगे।

प्रकृति, प्राणी, वनस्पति और ऋतु चारों का जैसा सामंजस्य इस समय दिखता है उसी ने मानव को नवसंस्येष्टि के रूप में उल्लास और प्रेम के उत्सव के रूप में, स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया होगा। यह उल्लास और प्रेम का उत्सव हमें इस विचार के लिए प्रेरित करता है कि नफरत, द्वेष, क्रोध, बदले की भावना, किसी प्रकार की विद्रूपता और अवांछनीय स्वभाव या व्यवहार की हमारे जीवन में कोई जगह नहीं है। सनातन काल से इस दिन घरों में यज्ञ–हवन और उल्लास का उत्सव मनाने का यही भाव रहा है जहां सभी मानसिक विद्रूपताएं, बिगलित धारणाएं और मान्यताएं तथा स्वभाव–व्यवहार हवनकुंड या होलिका में जलकर ऐसे नष्ट हो जाते हैं, जैसे होलिका में खरपरवार जल कर नष्ट हो जाते हैं और धरती मां पूरी तरह साफ–सुथरी बन जाती हैं। जीवन के जितने भी रंग हैं सभी रंगों में वासंती और प्रेम का रंग सबसे गहरा, स्थिर और शुभ माने गए हैं। प्रकृति भी अपने नये अंकुरों, रंगों और उमंगों में चारों तरफ हँसती–बिहँसती हमसे यही तो कहती है– होली के इस रंग को अपने स्वभाव, व्यवहार और विचारों से ऐसा रंग दो कि कोई इसे अपने निहित स्वार्थ में बदरंग न कर सके। होली खेलें रघुबीरा अवध में होली खलें रघुबीरा। ब्रज में कृष्ण और गोपिकाएं भी प्रकृति के प्रेम और वासंती भाव में ऐसे भावविभोर हो गए कि उन्हें पता ही नहीं कि प्रेम, सदभावना और मैत्री के अलावा कुछ और भी रंग हो सकता है कि नहीं। जिन सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक और धार्मिक परंपराओं और प्रवृतियों को मानव की सहजता में होली–फगुआ के इस उल्लासमय रूप को परंपरा और जीवनधर्मिता का पर्व बनाया गया, हम उसे सहजता से निभाने और आगे बढ़ाने का प्रेममय दृढ़ता प्रदान कर पाएं तो होली अपने सही स्वरूप में हमारे जीवन का एक महानतम पर्व बनकर हमें जीवन को प्रेममय बनाने की दृढता और स्थिरता देकर पूर्णता की ओर ले जाती दिखाई पड़ेगी। हम इसे बाजारू–रूप रंग में न रंगकर मानवीय और आत्मिक–जीवन के सही रंग में देखने का प्रयास करें तो होली का सही स्वरूप हमारे जीवन–रंग में ढलता दिखाई पड़ेगा। होली राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, मानवीय, सामाजिक और जीवनी–शक्ति का सबसे प्राकृतिक संदर्भ है जिसे इसके मूल्यपरक स्वरूप को अपनाकर और प्रचाारित–प्रसारित करने की जगह बना सकते हैं।

जीवन की उत्सवधर्मिता में जिन होली के अनेक रंगों को हम देखते हैं और उन रंगों में रंगी अनेक मान्यताएं, परंपराएं और धारणाएं हमें सात्विकता से अनायास ही जोड़ देती हैं। उत्सवधर्मिता का सुख यदि किसी त्यौहार में हमें पूरे शबाब के साथ दिखाई पड़ता है तो वह त्यौहार है होली या फगुआ। सनातन वैदिक परंपरा में यह वासंती नवसस्येष्टि या फाल्गुन पौर्णमास्येष्टि तो पौराणिक परंपरा में होली या होलिका दहन कहते हैं। मथुरा, वृंदावन, बरसाना, नंदगांव, काशी, प्रयाग और पंजाब की होली का रंग परंपरागत उत्सवधर्मी रंगों से सराबोर होते हुए भी अद्भुत है। यही होली की मौलिकता, नवीनता और उत्सवधर्मिता है।

पुराने संस्कृत ग्रंथों में होली शब्द तो नहीं है लेकिन फाल्गुन मास की विविधताओं और उत्कृष्टताओं के रंग अनेक मंत्रों में पिरोए मिलते हैं। संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में भी होली या मदनोत्सव का वर्णन बहुत मनोरम ढंग से मिलता हैं। इसी तरह भारत की सभी भाषाओं के अनगिनत ग्रंथों में होली किसी न किसी रूप में मौजूद है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के मुताबिक होली से नए साल की शुरूआत होती है। प्रकृति में एक नया उत्साह, नया रंग, मौलिकता और नई चेतना का एहसास होता है। होली के रंग इनमें सराबोर हो जीवन की पूर्णता के रंग 'प्रेम' का प्रकटन करते हैं। वैदिक वांगमय में इस पूर्णता को कई रंगों में देखने की कोशिश की गई है।

कृषि लोक संस्कृति में होली का रंग सभी रंगों में बेजोड़ और उत्सवधर्मी है। इसी तरह सांस्कृतिक, साहित्यिक, कला और जीवन शैली के भी अनेक रंग इनमें घुले मिलते हैं। इस त्यौहार की सबसे बड़ी ख़ासियत यही है कि इसके जितने भी रंग हैं, सभी रंगों की छटा अलग–अलग होते हुए भी एक है। व्यक्ति, परिवार, समाज, संस्कृति, साहित्य और निखिल विश्व को

अपने रंगों में पिरोए होली का यह त्यौहार भले ही भारतीय हो लेकिन यह प्रकृति और सारे विश्व का उत्सव–पर्व में प्रकट होने वाला मौलिक और नूतन आनंद है जिसे सभी मतों, मजहबों और सम्प्रदायों के लोग बहुत ही प्रेम के साथ बिना किसी दुराग्रह के मनाते हैं।

भारत में विभिन्न अंचलों की होली अलग–अलग मान्यताओं, परंपराओं और रंगों से रंगे होने के बावजूद सभी रंगों का एक ही रंग है, वह है सहिष्णुता का रंग। होली एक ऐसा उत्सवधर्मी त्यौहार है जो जीवन की वासंती छटा को प्रेम के रंग में रंगकर हमें प्रेममय होने की प्रेरणा देता है। गुरु गोबिंद सिंह महराज ने होली का होला मोहल्ला कर दिया। तब से पंजाब में इसे इसी रूप में बनाया जाता है। कहा जाता है, गुरु गांबिंद सिंह ने छह दिन तक इस उत्सव को मनाने की परंपरा डाली। और इसे युद्ध यानी पौरुष से जोड़कर मनाने की परंपरा डाली। लंगर की पंरपरा भी इससे जुड़ी हुई है।

इसी तरह इस दिन को बंगाल दोल जात्रा के नाम से मनाया जाता है। इस दिन चैतन्य महाप्रभु का जन्मदिन भी है इस लिए इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। भजन–कीर्तन और राधा–कृष्ण की पूजा के साथ शुरू होने वाली होली का उत्सव राधा–कृष्ण की पूजा के साथ ही सम्पन्न होती है। चैतन्य महाप्रभु द्वारा रचित संगीत होलिकोत्सव यानी जात्रा में प्रमुखता से गाया बजाया जाता है।

इसी तरह पूर्वोत्तर में मणिपुर में होली का त्यौहार याओसांग के नाम से जाना जाता है जिसमें रंग भरी पिचकारी का महत्व सबसे ज्यादा होता है। याओसांग यानी झोपड़ी होली के दिन सरोवर के किनारे बनाई जाती है और चैतन्य महाप्रभु की मूर्ति बनाकर उसकी स्थापना इसमें की जाती है। इसी तरह पश्चिम में महाराष्ट्र में होली रंग पंचमी के नाम से मनाई जाती है। यहां भी रंग खेलने की सनातन परंपरा है। लेकिन वह रंग सूखा होता है। किसी के ऊपर कोई जबरन रंग नहीं डालता। यानी उत्सव का उल्लास स्वीकारता के साथ ही बढ़ता है और निवेदन के साथ समाप्त होता है। महाराष्ट्र से सटे गोवा में होली को शिवगो के नाम से मनाया जाता है। इसे कोंकणी भाषा में शिमगोत्सव कहा जाता है। इस दिन यहां जूलुस के साथ सांस्कृतिक कार्यक्रम किए जाते हैं। सभी जातियों और महजबों के लोग इसमें हिस्सा लेते हैं।

यदि होली उत्तर में रंगोत्सव है तो दक्षिण में मदनोत्सव है। एक पौराणिक कथा के अनुसार देवी सती जब मृत्युलोक चली गईं तो महादेव को बहुत गुस्सा आया। वे ध्यान लगाकर बैठ गए। कई वर्ष के बाद पार्वती शिव को पाने के लिए तप करने लगीं। लेकिन महादेव के ध्यान से बाहर आए बगैर उन्हें वर के रूप में पाना पार्वती के लिए संभव नहीं था। इसके लिए कामदेव को तैयार किया गया। कामदेव ने शंकर पर काम के बाण छोड़े। लेकिन शंकर ने कामदेव को भस्म कर दिया। लेकिन कामदेव का असर शिव शंकर पर हो चुका था। इससे पार्वती का विवाह शंकर से हो गया। इस लिए मान्यता के अनुसार ही इसे मदनोत्सव कहा जाता है। तमिलनाडु में होली को कमन पोडिगई कहा जाता है।

मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, कर्नाटका, आंध्रप्रदेश, तेलांगाना, बिहार, झारखंड, हरियाणा और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में होली की विविधता के अनेक रंग–ढंग हैं।

प्रकृति ने अंगडाई ली और फाल्गुन अपने मस्ती में चूर हो गया। मादकता से सराबोर मानव इठलाता हुआ प्रकृति से अठखेलियां करने लगा और महुए के कूंच और आम के बौर की रसजीविता को निहारने लगा। आह, कितना उल्लास है कितनी सहजता है। हर ओर अनेक नये रंग। इन रंगों में छिपा मदनोत्सव का तरंग। और इसमें सराबोर हुए सारे नर और नारी। ऐसी जीवन दीप्ति भला और कहां द्रष्टव्य होती होगी! पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण। चारों दिशाओं में नयनों को उठाकर देखिए–जीवनोत्सव का उत्तंग शिखर दिखाई पड़ेगा। यही तो होली है। जीवन का रंग इससे ही प्रियता के संग गाढ़ा होता है। आओ, हम होली खेले रघुबीरा के साथ। ढोलक की थाप और मंजीरे के रुनझुन के साथ। जम्मुन, फिलिप और माटा शोख के साथ। इस भारतीय होली को वासंती रंग में घोलकर एक बार देखो तो। ************

आर्य लेखक परिषद् पत्रिका और आर्य लेखक परिषद् की वेबसाइट के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजें।

परिषद्–समाचार

आर्य लेखक परिषद् के तत्वावधान में अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन सम्पन्न
प्रयागराज कुम्भ में 16–17 फरवरी, 2019 को हुआ आयोजन
आधार विषय– वैदिक वाड्.गमय की सार्वकालिकता और वर्तमान लेखन की दशा–दिशा

वेद–वेदांगों के स्वाध्याय से समाज और संस्कृति को आदर्श रूप दिया जा सकता है।
– आचार्य रूप चन्द्र 'दीपक'

भारतीय जनमानस का प्राण कहे जाने वाले कुम्भ में साहित्यकारों का सार गर्भित विषय पर विचार विमर्श करना समाज को नई दिशा देने वाला होगा। – डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल

देव नागरी में दुनिया की सभी भाषाओं की लिपि बनने का सामर्थ्य है। – संत समीर

साहित्यकार हैं समाज के सच्चे मार्गदर्शक है। – डॉ. आलोक सोनी

आर्य लेखक परिषद् की ओर से दिया गया 37 साहित्यकारों व विद्वानों को 'साहित्य प्रज्ञा सम्मान'

प्रयागराज (उ.प्र.) में प्रत्येक छः वर्ष में अर्ध कुम्भ और बारह वर्ष में कुम्भ के आयोजन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इस वर्ष का आयोजन (15 जनवरी से 4 मार्च 2019 तक) ग्रीनिज बुक ऑफ रिकार्ड –सफाई और जनसमूह की दृष्टि से विश्व पटल पर चर्चित रहा। इसी कुम्भ में आर्य लेखक परिषद् ने दो दिवसीय साहित्यकार सम्मेलन का आयोजन किया। जिला आर्य प्रतिनिधि सभा प्रयाग के वैदिक धर्म प्रचार शिविर के परिसर में आयोजित होने वाले इस सम्मेलन में देश के अनेक राज्यों से पधारे साहित्यकारों ने भाग लिया और अपनी ओजस्वी वाणी और चिन्तन के द्वारा विभिन्न विषयों पर चर्चाएं कीं। सम्मेलन में वैदिक वाड्.गमय, हिन्दी साहित्य और लोक भाषाओं के विविध विधाओं पर मूल्यपरक परिचर्चाएं आयोजित की गईं। देशभर के वरिष्ठ नवोदित साहित्य साधकों ने खुलकर अपने विचार प्रस्तुत किए। पत्रकारिता व स्वतंत्र लेखन की दिशा–दशा पर जहाँ चर्चाएं की गईं वहीं पर कवियों ने दोनों दिन अपनी देशपरक, मूल्यपरक, समाज सुधार, संस्कृतिपरक और लोक भाषा(अवधी, भोजपुरी और छत्तीसगढ़ी) कविताओं के द्वारा उपस्थित लोगों को सोचने और सराहने के लिए मजबूर कर दिया।

16 जनवरी 2019 को कार्यक्रम का विधिवत् उद्घाटन पूर्व आईएएस और वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. प्रमोद अग्रवाल,(नई दिल्ली) वरिष्ठ चिन्तक और भाषाविद् श्री संत समीर(गाजियाबाद) और वैदिक विदुषी डॉ.प्रीति विमर्शनी(वाराणसी) ने किया। पाणिनी कन्या महाविद्यालय वाराणसी की मेधावतृ छात्राओं के मंगलाचरण के उपरान्त परिषद् के मन्त्री और साहित्यकार आ. अखिलेश आर्येन्दु ने सम्मेलन में पधारे विद्वानों का परिचय कराया।

प्रथम सत्र जो की उद्घाटन सत्र भी था का प्रारम्भ प्रातः 10.30 बजे हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. प्रमोद अग्रवाल जी ने किया। विषय प्रवर्तन अखिलेश आर्येन्दु किया। और वक्ता थीं आचार्या प्रीति विमर्शनी। मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. हरी सिंह पाल और श्री सन्त समीर उपस्थित थे।

विषय प्रवर्तन करते हुए आचार्य अखिलेश आर्येन्दु ने वैदिक वाड्.गम की सार्वकालिकता और वर्तमान लेखन की दशा–दिशा जैसे अत्यंत आवश्यक, दार्शनिक और

सम सामयिक विषय को सम्मेलन का आधार विषय बनाने के कारण के सम्बन्ध में विस्तार से प्रकाश डालते हुए बताया कि जहाँ आज विश्व में आतंक, पर्यावरण, अशिक्षा, बेरोजगारी, बाल–महिला शोषण और हिंसा की बढ़ती कुप्रवृतियों को लेकर चर्चाएं होती हैं और इनके समाधान को लेकर विचार व्यक्त किए जाते हैं वहाँ पर वैदिक वाड्.गमय की प्रासंगिकता को लेकर साहित्यकारों के मध्य चर्चा कराने की क्या आवश्यकता है? आज भी वेद–वेदांग धर्म, समाज, मानव संस्कृति, साहित्य, कला, विज्ञान और मानव जीवन के लिए क्यों आवश्यक हैं? उपस्थित साहित्यकारों ने सम्मेलन का आधार विषय रखने के पीछे के कारणों को सुना तो उन्हें लगा वास्तव में मानव समाज, विज्ञान, धर्म, साहित्य, लेखन और मानव मूल्यों के क्षरण को रोकने के लिए आधार विषय के रूप में इसे रखना सम्मेलन की मौलिकता, उपयोगिता और नवीनता की दृष्टि से आवश्यक है।

वैदिक विदुषी, लेखिका और प्रखर चेतना की धनी पाणिनी कन्या महाविद्यालय की आचार्या डॉ. प्रीति विमर्शनी ने वैदिक वाड्.गमय की सार्वकालिकता को क्रमबद्ध ढंग से प्रमाण और उदाहरण के माध्यम से व्यक्त किया। आप ने कहा,– आज जब विश्व में अनेक जटिल समस्याएं, संकट, परेशानियाँ और कुवृतियाँ मानवता और धर्म को विध्वंस करने में लगी हुई हैं, चारों ओर हिंसा, भ्रष्टाचार, अनाचार और अश्लीलता का वातावरण व्याप्त हो गया है ऐसे में वेद की धारा ही आशा की किरण लेकर आती है। क्योंकि वेद का ज्ञान ही मानव मात्र के कल्याण, समृद्धि और सर्वसुख प्रदान करते हैं। वैदिक वाड्.गमय के प्रत्येक पक्ष पर डॉ. विमर्शनी ने जिस प्रकार से अपनी बात रखी वह वास्तव में उनके अत्यंत गम्भीर चिन्तन और स्वाध्याय का प्रतिफल है। साहित्यकारों को उनके लेखन के लिए प्रेरणाप्रद व्याख्यान के लिए डॉ. विमर्शनी का वाक्तव्य सराहनीय ही नहीं अभिनन्दनीय भी कहा जाना चाहिए।

मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए साहित्यकार और नागरी लिपि परिषद् के महामन्त्री डॉ. हरी सिंह पाल ने कहा,– आमतौर पर साहित्यकारों के सम्मेलनों में आधार विषय के रूप में वैदिक वाड्.गमय जैसे गूढ़ विषय कभी देखने–सुनने में नहीं आए। पहली बार ऐसा हुआ कि साहित्यिक सम्मेलन में इस प्रकार का विषय चुना गया है। इस विषय को वर्तमान लेखन की दशा–दिशा से जोड़कर हमें नई ऊर्जा और प्रेरणा दे सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि इस पर हर साहित्यकार गम्भीरता से चिन्तन करे कि उसके लेखन में वैदिक वाड्.गमय किस प्रकार उपयोगी और ज्ञानप्रद हो सकता है।

विशिष्ठ अतिथि के रूप में अपना चिन्तन प्रस्तुत करते हुए लेखक, सम्पादक और पत्रकार श्री सन्त समीर ने इस बात पर बल दिया कि आज का लेखक और उसके लेखन के लिए उपयोगी और मौलिक सामग्री के चयन के लिए क्या करना चाहिए। निश्चित ही वैदिक वाड्.गमय इस दिशा में लेखक को अत्यंत सहायक बन सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि उसका ठीक–ठीक और सन्तुलित स्वाध्याय किया जाए। चिन्तन और लेखन के कार्य में वैदिक वाड्.गमय लेखक के लिए वह सामग्री मिल सकती है जिससे लेखन अत्यंत पठनीय, प्रेरक, उपयोगी और कालजयी हो जाए।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता करते हुए पूर्व आई. ए. एस और वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. प्रमोद अग्रवाल ने वैदिक वाड.गमय की सार्वकालिकता और वर्तमान लेखन की दशा–दिशा विषय पर अपने समीक्षात्मक और सार गर्भित उद्बोधन में कहा,–वैदिक वाड्.गमय किसी एक देश, समाज, वर्ग, जाति, वर्ण या समुदाय के लिए नहीं हैं प्रत्युत यह सार्वजनिन तथा सार्वकालिक ज्ञानकोश हैं। उन्होंने वेद की मौलिकता, उपयोगिता, चिर नवीनता, सम सामयिकता, ज्ञान–विज्ञान, धर्म और वर्तमान समाज से जोड़ते हुए इस बात पर जोर दिया कि विश्व समाज को वैदिक वाड्.गमय को समाज, संस्कृति, जीवन मूल्य और विज्ञान के शांतिमय उपयोग के लिए उपयोग करना चाहिए। विश्व में शांति, अहिंसा, प्रेम, दया, करुणा, सदाशयता और सर्वसुख की स्थापना बिना वेदों के ज्ञान के हो ही नहीं सकती।

सम्मेलन के प्रथम दिवस का द्वितीय सत्र चिन्तन सत्र के रूप में रखा गया था। जिसका विषय **भारतीय संस्कृति और देवनागरी लिपि का वैज्ञानिक व सांस्कृतिक संदर्भ था** पर गम्भीर चिन्तन किया गया। विषय प्रवर्तन आचार्य अखिलेश आर्येन्दु ने किया। अध्यक्षता वरिष्ठ वैदिक विद्वान्, लेखक व उपदेशक महाविद्यालय लखनऊ के संस्थापक व संचालक

आचार्य रूप चन्द्र 'दीपक' ने किया। मुख्य अतिथि के रूप में आचार्या प्रीति विमर्शनी और आर्य मनोज फगवाडवी उपस्थित थे। सत्र के प्रारम्भ में विषय प्रवर्तनकर्ता ने देवनागरी लिपि के वैज्ञानिक व सांस्कृतिक संदर्भ के विषय में प्रकाश डालते हुए बताया कि देवनागरी लिपि ही विश्व की एक मात्र ऐसी लिपि है जो पूरी तरह से वैज्ञानिक, व्यावहारिक, सर्व सामर्थ्यवान और आदर्श रूप में है। भारत में इस लिपि में कई भाषाएं लिखीं जाती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि भारत सहित विश्व की अन्य भाषाओं को लिखने का भी यह माध्यम बने। आज इसी विषय पर हम सभी चर्चा करेंगे।

सत्र वक्ता के रूप में बोलते हुए नागरी लिपि परिषद् के महामंत्री डॉ. हरी सिंह पाल ने नागरी लिपि के सम्पूर्ण सांस्कृतिक संदर्भ, उसकी वैज्ञानिकता, व्यावहारिकता, प्रयोग और निर्माण पक्ष को संदर्भित किया। डॉ. पाल ने कहा, –देवनागरी लिपि के वैज्ञानिक स्वरूप, इसकी व्यावहारिकता, सहज प्रयोग पर भारतीय और विदेशी भाषाविदों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। यह ही ऐसी लिपि ही जिसकी उत्पत्ति अत्यंत वैज्ञानिक, दार्शनिक और तत्त्वदर्शी है। आर्य लेखक परिषद् ने इस सम्मेलन में इस विषय को चर्चा में रखकर निश्चित ही प्रशंसनीय कार्य किया है। विचारणीय बात यह है कि भारत के सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक के सभी विद्वानों, भाषाविदों और गवेषकों ने इसकी वैज्ञानिकता को स्वीकार किया है। 'जैसा बोला गया वैसे लिखा गया' की उक्ति नागरी लिपि पर पूर्णतः ठीक बैठती है। एक आदर्श और वैज्ञानिक लिपि यदि विश्व में कोई है तो वह देवनागरी लिपि है। यही कारण है की महर्षि दयानंद, गाँधी, बिनोबा, काका साहब कालेलकर जैसे अहिन्दी भाषा क्षेत्र के महामानव भी इस लिपि को देश, समाज और राष्ट्र–एकता के हित में सभी भाषा–भाषियों को अपनाने पर बल देते रहे।

चिन्तक और साहित्यकार श्री सन्त समीर ने देवनागरी लिपि के अक्षरों की उत्पत्ति, उनकी बनावट, उनका सामाजिक और तात्विक संदर्भ, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को विस्तार से बताया। जिसमें उन्होंने अक्षरों की उत्पत्ति के पीछे छिपे गूढ़ तात्विक व्याकरणिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक आधारों को विस्तार से बताया। भारत की श्रेष्ठता में यदि हम संस्कृति, साहित्य, ज्ञान–विज्ञान में देखते हैं तो लिपि के मामले में भी हम सर्वश्रेष्ठ हैं। वर्णों की बनावट, उनकी उत्पत्ति, उच्चारण, स्वर की विवृतियां और अन्य अनेक मामलों में देवनागरी लिपि का कोई मुकाबला नहीं। उदाहरण के माध्यम से उन्होंने वर्ण–उत्पत्ति की विवेचना कर यह सिद्ध कर दिया की देवनागरी लिपि हमारे सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक उन्नयन के प्राण में है।

मुख्य अतिथि के रूप में आचार्या प्रीति विमर्शनी ने देवनागरी लिपि के सांस्कृतिक सन्दर्भ को धार्मिक, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक विषयों से जोड़कर प्रस्तुत किया। आर्य मनोज फगवाडवी ने विशिष्ठ अतिथि के रूप में अपना वक्तव्य कविता और भाषण के रूप में दिया। उन्होंने कहा, –हमारी लिपि और भाषा दोनों विश्व मानचित्र में सर्वश्रेष्ठ है। इसकी श्रेष्ठता तब और भी बढ़ जाएगी जब सभी भारतीय इनके प्रयोग में गर्व का अनुभव करें।

16 फरवरी का तीसरा सत्र 4.30 बजे से प्रारम्भ हुआ। चिन्तन सत्र का विषय था –**सामाजिक व सांस्कृतिक सरोकार में साहित्यकार व पत्रकार का योगदान।** इस सत्र का **विषय** प्रवर्तन आचार्या प्रीति विमर्शनी ने किया। मुख्य वक्ता पत्रकार, लेखक व सम्पादक श्री विजय चित्तौरी(करछना, प्रयागराज) और साहित्यकार डॉ. विजयानन्द(झूंसी प्रयागराज) थे। दोनों वक्ताओं ने विस्तार से सामाजिक व सांस्कृतिक सरोकार में साहित्यकार और पत्रकार के योगदान पर विस्तार से प्रकाश डाला।

श्री चित्तौरी ने अपने वक्तव्य में कहा,–आज की पत्रकारिता नकारात्मकता से भरी हुई है। इस कारण समाज में नकारात्मकता लगातार बढ़ती जा रही है। पीत पत्रकारिता समाज को पतझड़ की ओर ले जा रही है जब कि साहित्य की अनेक विधाएं जिसमें कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध और नाटक आदि के माध्यम से सकारात्कता का प्रसार होता है। पत्रकारिता और साहित्य का तुलनात्मक व्याख्या करते हुए श्री चित्तौरी ने कहा,– साहित्यकार अपने सृजन में निर्माण पक्ष को लेकर चलता है वह तात्कालिक प्रसार के लिए सस्ती लोकप्रियता पाने के लिए नकारात्मक साहित्य का सृजन नहीं करता। इसलिए साहित्य का प्रभाव समाज में सकारात्मकता, मानवीय मूल्यों,

सद्भावनाओं और आदर्श समाज निर्माण के रूप में देखा जाता है। आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियां मीडिया के माध्यम से समाज को एक बाजार में बदलती जा रही हैं। इसे साहित्यकार अपने सृजन के माध्यम से रोक सकता है। लेकिन पत्रकार ऐसा नहीं कर पाता है। आज पत्रकारिता मिशन नहीं बल्कि बाजार का अंग बन कर रह गई है।

साहित्यकार डॉ. विजयानन्द ने अपने विवेचनात्मक भाषण में कहा,–साहित्यकार और पत्रकार दोनों समाज में सृजनात्मक भूमिका निभाते हैं। साहित्य जब समाज को नई दिशा देने का कार्य करता है तो पत्रकारिता तात्कालिक घटनाओं, संदर्भों और विषयों को लोगों तक पहुंचाकर समाज को सूचना देने का कार्य करती है। लेकिन पत्रकारिता आज जिस रूप में है उसे सुधरने की आवश्यकता है। शुभत्व और शांति फैलाने का कार्य जब तक मिशनरी भाव से नहीं होगा तब तक मानवीय आदर्श का विस्तार नहीं होगा। आज निर्माण के कार्य प्रत्येक स्तर पर होने चाहिए। पत्रकार और साहित्यकार इसमें अपनी सर्वोच्च भूमिका निभा सकते हैं।

सत्र की अध्यक्षता कर रहे वरिष्ठ पत्रकार भगवान प्रसाद उपाध्याय (प्रयागराज) ने कहा,–पत्रकारिता और साहित्य दोनों समाज से जुड़े रहने वाले विषय हैं। श्री विजय चित्तौरी ने तुलनात्मक ढंग से पत्रकारिता और साहित्य की जो विवेचना की वह आज के संदर्भ का एक यथार्थ है। जिस दौर में आज पत्रकारिता गुजर रही है वह दौर कई विकट समस्याओं और संकटों भरा है। पत्रकारिता मिशन के रूप में जब तक नहीं बनेगी तब तक समाज में अपने उस प्रभाव को नहीं छोड़ पाएगी जिसके लिए यह बनी है। इसी तरह साहित्य को उस रूप में होना पड़ेगा जिससे समाज में बढ़ रही समस्याओं से मुक्ति मिल सके। आर्य लेखक परिषद् ने जिस प्रकार से आज के संदर्भ में सम्मेलन में विषयों को रखा, वह वास्तव में एक सार्थक पहल है।

अंतिम सत्र में समापन सत्र का था जिसमें पुस्तक विमोचन, सम्मान पत्र वितरण के साथ समाज सुधार में साहित्यकार व पत्रकार की भूमिका और साहित्यकार कासमकालीन विवेक जैसे अत्यंत गम्भीर विषय पर चर्चा की गई। इस सत्र की अध्यक्षता वरिष्ठ वैदिक विद्वान्, लेखक और उपदेशक महाविद्यालय लखनऊ के संस्थापक आचार्य रूप चन्द्र 'दीपक' ने की। विषय प्रवर्तन आचार्य अखिलेश आर्येन्दु ने किया। मुख्य अतिथि के रूप में लेखक, पत्रकार और सम्पादक तेजपाल सिंह धामा(मेरठ) श्री राममूर्ति (प्रयागराज) श्री सन्त समीर, डॉ. हरी सिंह पाल उपस्थित थे। वक्ताओं ने समाज सुधार में साहित्यकार व पत्रकार की भूमिका को लेकर गम्भीर चर्चाएं कीं। एक आदर्श समाज कैसे निर्मित हो सकता है? सार्थक पहल के लिए कलमकारों की भूमिका को नहीं नकारा जा सकता है,लेकिन बजारू साहित्य से यह कार्य नहीं होगा। श्री तेजपाल सिंह धामा ने कहा,– समाज सुधार आदर्श साहित्य के माध्यम से ही हो सकता है। आज बाजार का युग है। मीडिया तंत्र बाजारू बन गया है। इस बाजार तंत्र को तोड़ना आवश्यक है।

साहित्यकार का समकालीन विवेक विषय पर बोलते हुए चिंतक और साहित्यकार श्री सन्त समीर ने कहा,–केविन कार्टर फाटो ग्राफर से सम्बन्धित घटना 1993 की है। इस वर्ष सूडान में अकाल पड़ा था उस दौरान की घटना है। फोटोग्राफर केविन कार्टर जिस रास्ते से गुजर रहे थे उस रास्ते में एक जगह एक लड़की मरणासन्न पड़ी थी। एक गिद्ध भी लड़की के अन्तिम श्वास गिन रहा था कि कब मरे और वह अपना उसे ग्रास बनाए। केविन ने उस दृश्य को कैमरे में कैद किया। लेकिन बाद में जब केविन को मालुम हुआ कि वहाँ दो गिद्ध थे जो लड़की को नोच–नोचकर खाना चाहते थे लेकिन वह उसे बचा न सका। यदि चाहता तो बचा सकता था। घर आकर केविन ने जब उस दृश्य पर सोचना शुरू किया तो उसे इतनी ग्लानि हुई की उसने आत्महत्या कर ली। इसी प्रकार एक वाकया गांधी का इलाहाबाद में पहली बार में आने की है। गांधी जी की उस दिन ट्रेन छूट गई थी। अगले दिन वह पायोनियर के दफ्तर में गए और सम्पादक से बोले,–आप मेरे खिलाफ हमेशा लिखते रहते हैं कभी मेरे पक्ष में भी लिख दिया करिए। सम्पादक बोला–मैं ब्रिटिश सरकार के आधीन हूं इसलिए हमारी मजबूरी है, लेकिन आप ने जो कहा है, मैं उस पर जरूर गौर करूंगा। ये दोनों घटनाएं संवेदना से सीधे जुड़ी हुई हैं। तत्काल क्या निर्णय लेना चाहिए, यदि सही निर्णय न लिया गया तो केविन जैसी स्थिति भी आ जाती है।

अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए आचार्य रूप चन्द्र 'दीपक' ने अपने विशेष उद्‌बोधन में कहा,– साहित्य सृजन समाज को नई दिशा देता है, लेकिन ऐसा साहित्य ही समाज को नव चेतना से युक्त कर सकता है जो जीवन्त, ज्ञानमय और मानवीय संवेदना से पूर्ण हो। वेद–वेदांग के स्वाध्याय के बाद जो सृजन होता है और सामान्य स्थितियों में जो होता है, उसमें अन्तर होता है। साहित्यकार और पत्रकार का लिखना और बात है लेकिन उसे जीवन का अंग बनाना और बात है। आर्य लेखक परिषद् ने जिस उद्‌देश्य से इस सम्मेलन का आयोजन किया, उसमें वह पूर्णतः सफल रही। इसके संयोजक धन्यवाद के पात्र हैं।

16 फरवरी को सायंकाल 7.30 बजे से अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। कवि सम्मेलन रात्रि एक बजे तक चला। सम्मेलन में देश के अनेक चर्चित कवियों ने भाग लिया और अपनी कविताओं से उपस्थित जनसमूह को रसासिक्त कर दिया। 16 फरवरी के कवि सम्मेलन के संचालक कवि और लेखक डॉ. रसिक किशोर सिंह 'नीरज' राय (बरेली) ने किया। आयोजक थे आचार्य अखिलेश आर्येन्दु। कवि सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ. कृष्णावतार त्रिपाठी (भदोही) ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री जय प्रकाश शर्मा 'जनकवि' थे। कवि सम्मेलन का प्रारम्भ सरस्वती वन्दना (ईश्वर वन्दना) के रूप में श्री सन्त राम 'सत्येन्दु' के द्वारा हुआ। जिन कवियों ने अपनी श्रेष्ठ रचनाओं के माध्यम से लोगों के हृदय को आनंदित किया उसमें सर्वश्री आर्य मनोज फगवाडवी(पंजाब) रुद्र प्रताप सिंह, सौहार्द दीक्षित (इटावा) दीपक राज(इटावा) ठाकुर इलाहाबादी, शिव बहादुर सिंह दिलबर, हरिश्चन्द्र त्रिपाठी, मोहित कालीदास (बोकारो, झारखंड) भगवान प्रसाद उपाध्याय (प्रयागराज) जाहिद सूफी (बोकारो, झारखंड) बालेन्द्र मिश्र (सारंग) , देवी प्रसाद पाडेण्य (झूसी) उमा दीक्षित (इटावा), दीपकंर गुप्त (बरेली), सन्त समीर (गाजियाबाद), बाबा कल्पनेश, अरविन्द कुमार साहू (राय बरेली) राजीव गहरवार (मेजा, प्रयागराज), आचार्य अखिलेश आर्येन्दु (दिल्ली), दुर्गा शंकर वर्मा 'दुर्गेश', आचार्य सूर्यप्रसाद शर्मा 'निशिहर', रुद्र प्रताप सिंह, डॉ. विजयानन्द, डॉ. रूपचन्द्र 'दीपक' के अतिरिक्त अनेक कवियों ने अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाओं का पाठ किया।

17 फरवरी को सम्मान वितरण समारोह के उपरान्त अनेक कवियों ने अपनी कविताएं पढ़ीं। जिसकी अध्यक्षता आचार्य सूर्य प्रसाद शर्मा 'निशिहर' जी ने की। संचालन श्री रसिक किशोर सिह 'नीरज' ने की। इस दिन 20 कवियों ने कवि सम्मेलन में भाग लिया,जिसमें हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, अवधी में भी कवियों ने कविताएं पढ़ीं। मुख्य अतिथि के रूप में बाबा कल्पनेश और आर्य मनोज फगवाडवी उपस्थित थे।

आर्य लेखक परिषद् के इस साहित्य महोत्सव (कुम्भ) में साहित्य की उन प्रवृतियों पर चर्चाएं हुईं जो आमतौर पर देखने में नहीं आती हैं। कार्यक्रम के आयोजक आचार्य अखिलेश आर्येन्दु थे। और सहयोगी और स्थानीय संयोजक के रूप में डॉ. रसिक किशोर सिंह 'नीरज' का विशेष योगदान रहा। इसके अतिरिक्त आर्य राजेन्द्र कपूर, संतोष शास्त्री और डॉ. राजेन्द्र कुमार वर्मा का सहयोग मिला। कार्यक्रम में सुश्री सुषमा आर्या (दिल्ली) पं. हरिश्चन्द्र आर्य (हिमाचल प्रदेश) का योगदान भी मिला।

आमतौर पर आर्यसामाजिक परम्परा में वेद, धर्म और समाज सुधार सम्बन्धी प्रचार–प्रसार के लिए वैदिक विद्वानों, वैदिक विदुषियों और भजनीकों को बुलाया जाता है। यह परम्परा आर्यसमाज के स्थापना के साथ प्रारम्भ हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व उत्सवों में शास्त्रार्थ की भी परम्परा रही है जिससे जनता पर अत्यंत सकारात्मक प्रभाव पड़ता था। लेकिन स्वतंत्रता के एक–दो दशक तक ही शास्त्रार्थ की अनुठी परम्परा चली, बाद में शास्त्रार्थ महारथियों के तिरोधान के साथ यह धर्म–उन्नति की यह अनुठी परम्परा लुप्त होती गई। अब तो कभी–कभार ही शास्त्रार्थ आयोजन का समाचार सुनने में आता है। आर्य लेखक परिषद् के तत्वावधान में इस परम्परा से हटकर साहित्य, कला और संस्कृति उन्नयन की नई परम्परा साहित्यकार सम्मेलन के माध्यम से प्रारम्भ की गई है। आर्य साहित्यकार इसमें अपनी हिस्सेदारी निभायें जिससे परिषद् का उद्‌देश्य पूरा हो सके। सम्पूर्ण कार्यक्रम में आचार्य रूप चन्द्र 'दीपक'जी, डॉ. प्रीति विमर्शनी(वाराणसी) श्री सन्त समीर और डॉ. हरी सिंह पाल जैसे अनेक लेखक आर्य लेखक परिषद् से जुड़े होने के कारण परिषद् को बहुमूल्य योगदान मिला। हम सभी लेखकों, कवियों, पत्रकारों, वक्ताओं को हृदय से धन्यवाद और आभार व्यक्त करते हैं जिसके सहयोग से साहित्यकार सम्मेलन कुम्भ(प्रयागराज) के विशेष अवसर पर सफलता की ऊंचाइयां छूता हुआ सम्पन्न हो सका।

****

हुतात्मा पण्डित लेखराम